महाकवि धूर्जटि — एक अध्ययन

[एम० ए० उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध]

: प्रस्तुत–कर्त्ता :

पेरेपु० वेंकट नागभूषण शर्मा

आन्ध्र-विश्व-विद्यालय,

वाल्टेर।

1972

: निर्देशक :

' साहित्यरत्न '

डा० कर्ण० राजशेषगिरि राव,

एम० ए० [संस्कृत] एम० ए० [हिन्दी]
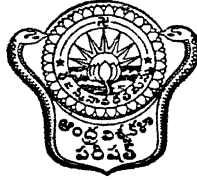
एम० ए० [तेलुगु] पी० एच० डी०

रीडर, हिन्दी विभाग।

' साहित्याचार्य, '

प्रोफेसर जी० सुंदररेड्डी,

अध्यक्ष, हिंदी विभाग।

उनकी लोकज्ञता और शास्त्रज्ञता का भी परिचय दिया गया है । धूर्जटि की आध्यात्मिकता पर भी प्रकाश डाला गया है । इसी अध्याय में श्री कालहस्तीश्वर शतक का भी मूल्यांकन किया गया है । चतुर्थ अध्याय में भावपक्ष के अंतर्गत रस, ध्वनि, गुण आदि का विवेचन किया गया है । पंचम अध्याय में कलापक्ष के अंतर्गत बिंबयोजना, अलंकार-योजना, शैली, छंदयोजना, भाषा आदि का विवेचन किया गया है । षष्ठ अध्याय में निष्कर्ष के अंतर्गत 'तेलुगु साहित्य को महाकवि धूर्जटि का योगदान' पर प्रकाश डाला गया है । परिशिष्ट में सहायक-ग्रंथ-सूची संलग्न है ।

प्रो0 जी॰ सुंदर रेड्डी, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग की अनुकंपा एवं प्रेरणा के बल पर महाकवि धूर्जटि पर शोध-कार्य करने में संलग्न हुआ हूँ । एतदर्थ मैं उनके प्रति अत्यंत कृतज्ञ हूँ । डा0 कर्ण राजशेषगिरि राव के तत्वावधान में यह शोध-कार्य संपन्न हुआ है । अतः मैं उनके प्रति कृतज्ञता का ज्ञापन करता हूँ । आशा है कि सहृदय पंडित मेरे इस विनम्र प्रयास का स्वागत करेंगे और मुझे आशीर्वाद देकर प्रोत्साहन प्रदान करेंगे ।

आपका

पेरेपु वेंकट नागभूषण शर्मा

(पे0वे0 नागभूषण शर्मा)

* * *

-: विषय - सूची :-

*% *% *%

1 . 0 . 0

विषय-प्रवेश

1-1-0

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश : मध्यकालीन परिस्थितियाँ :-

आंध्र साहित्य का इतिहास सहस्र वर्षों का है । यह तीन युगों में विभाजित किया जाता है - 1) आदि काल, 2) मध्य काल तथा 3) आधुनिक काल । मध्य काल दो कालों में पुनः विभाजित किया जा सकता है । पूर्व मध्य काल में पुराणों का अनुवाद किया गया । उत्तर मध्य काल में प्रबंध काव्यों का प्रणयन किया गया है । तत्कालीन परिस्थितियों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है -

ई0 सन् 1336 में स्थापित विजयनगर साम्राज्य तीन सौ वर्षों तक बना रहा है । विजयनगर शासकों ने 200 वर्षों तक दक्षिण भारत पर अपना अड्डा जमा लिया । आंध्र देश का विजयनगर शासनकाल एक प्रकार से स्वर्ण युग कहा जाता है । वाणिज्य-व्यापार, साहित्य, ललित कलाओं की बहुत उन्नति हुई । आंध्र साहित्य की इस युग में जितनी उन्नति हुई उतनी अन्य समय में नहीं हुई ।

हंपी विजयनगर राजाओं के राज्य शासन के संबंध में उनके समकालीन "न्यूनिज़" और "पेस्" की रचनाओं से हमें बहुत कुछ जानकारी मिलती है । ये दोनों कृष्णराय और अच्युतराय के दरबार में रहते थे । विजयनगर केवल राज्य नहीं, साम्राज्य था । आंध्र तमिल, और कर्नाटक प्रांतों को एक ही रस्सी में बांधकर पालन करना साधारण बात नहीं । विजयनगर राजा राजनीतिज्ञ थे और उनके पास विपुल सेना थी । कृष्णराय की सेना के संबंध में "पेस्" लिखता है -

" इनके पास दस लाख सैनिक हमेशा रहते हैं । यह स्थिर सेना है । इनमें पैंतीस हजार घुड़सवार हैं, यह सेना किसी भी क्षण युद्ध केलिए सन्नद्ध रहती है ।

इन तटाकों को पानी भरने के लिए अनेक 'कालु' भी खुदवाये गये थे । तुंगभद्रा नदी के को दो तीन बाँध बाँधकर इन तटाकों में पानी भरने का इंतजाम किया गया है ।

कृष्णराय के समय 'महर्नवमी' उत्सव अत्यंत वैभवपूर्वक मनाया जाता था । अब भी हंपी खंडहरों में 'महर्नवमी दिब्बा' नामक सुप्रसिद्ध स्थल दर्शनीय है । कृष्णराय की बारह पत्नियाँ थीं । उनमें से तीन रानियाँ थीं और उनमें से एक 'पट्टमहिषी थी । कृष्णराय के भाई अच्युतरायलु के जमाने में 500 औरतें थीं ।

कृष्णराय की राजनीति के बारे में उनके आमुक्तमाल्यदा से जाना जाता है — '' राष्ट्र के बीच में अरण्य नहीं होना चाहिए क्योंकि उनमें चोर डाकू आदि के अड्डे बनते हैं । सरहद प्रांतों में अरण्यों का होना अच्छा है । वहाँ के आदिवासियों में मित्रता बढ़ाना और भी अच्छा है । उससे वे राष्ट्र के पहरेदार के रूप में काम करेंगे । उस प्रांत की जमीन को निर्धन बहादुरों को देना उचित है । आदिवासी लोग और ये शूरवीर अगर बगल में हो तो एक दूसरे पर रखवाली करेंगे और दोनों के बीच में मनमुटाव होतो और भी अच्छा होगा । क्योंकि ऐसे अवसर को लेकर राजा अपना अड्डा जमा सकता है । शत्रुओं का और प्रांतों का राजा आक्रमण करना चाहिए। जो राजा को अपने शत्रुओं को जीतना चाहिए । गढ़ बनाना चाहिए । लेकिन शत्रुओं की औरतों को घर की बेटियों की तरह सम्मान करना चाहिए । उनके प्रति अन्याय या परुष व्यवहार नहीं चाहिए ।'' इस प्रकार साम्राज्य विस्तरण केलिए कृष्णराय अब अपनी राजनीति का प्रयोग करता था । कृष्णराय के समय में देश में अकाल नहीं था। सर्वसंपदाओं से देश सुभिक्ष था । व्यापार में ईमानदारी और चोरी केलिए अत्यंत कठोर शासन था ।

साहित्य एवं ललित कलाएँ :— कृष्णराय के समय में आंध्र साहित्य ने जितनी उन्नति पाई

उतनी किसी भी युग में नहीं । कन्नड और संस्कृत कवियों का भी कृष्णराय ने सम्मान करके उन उन साहित्यों का पोषण किया । लेकिन आंध्र साहित्य के प्रति कृष्णराय को अत्यंत अभिरुचि थी । अपने दरबार में अष्टदिग्गजों को आश्रय देकर भाषा की श्रीवृद्धि करवाई । तब तक साहित्यक्षेत्र में संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद और पुराणों की रचना होती थी । उनमें भी भक्ति परक ग्रंथ अत्यंत विस्तृत रूप में रचे गये थे । कृष्णराय के समय में अनुवादों पर प्रीति घटी थी । भक्ति परवशता भी कुछ हद तक धीमी पड़ गई । शृंगार रस की प्रधानता काव्यों में दिखाई देने लगी । राजसभा में सर्व सुखों को अनुभव करनेवाले कविगण उन राजाओं की खुशामदी केलिए अपनी रचनाएँ करने लगें । पेद्दना और मुक्कु तिम्मना उनमें प्रमुख हैं । कृष्णराय के समकालिक न होने पर भी विजयनगर के शासकों के समय में अनेक कविगण का आविर्भाव हुआ । पिंगल सूरन्ना, रामराज भूषण, तेनाली रामकृष्ण आदि अन्य प्रमुख कवि हैं । तेनाली राम-कृष्णा द्वारा विरचित पांडुरंगमहात्म्य तत्कालीन सामाजिक जीवन का प्रतिबिंब है । वेश्यालोलुपता तत्कालीन सर्वजन सामान्य प्रवृत्ति थी । राजा और ब्राह्मण आदि उच्च कुलों में यह प्रवृत्ति और भी अधिक थी । अनीतिपूर्ण इस प्रकार की जिंदगी से होनेवाले परिवारों की हानि इन त्रुटियों को सुलझाने केलिए किये गये प्रयत्न पांडुरंगमहात्म्य की [illegible] निगम शर्मा की कथा में अत्यंत स्पष्ट रूप में व्यक्त किये गये हैं ।

रायलु के दरबार के और एक कवि धूर्जटि जिसने श्री कालहस्तिमहात्म्य नामक शैव सांप्रदायपरक प्रबंध लिखा । कृष्णराय स्वयं वैष्णवमतावलंबी होने पर भी अन्य धर्मों का द्वेष नहीं किया । विविधमतों के बीच के संघर्ष का उन्मूलन कर समन्वय स्थापित किया गया है । श्रवण बेलगोला में जैनमत का गोमटेश्वर मंदिर अब भी

…है । यह उसकी धर्मनिरपेक्षता का …उदाहरण है ।

विजयनगर युग में साहित्य के साथ साथ चित्रकला और शिल्प की भी अभिवृद्धि हुई । हंपी में मंडप, पेनुकोंडा के गगन महल आदि अब भी खंडहरों के रूप में उस युग के शिल्प-वैभव को घोषित करते हैं। तमिल देश में भी विजयनगर राजाओं ने अनेक मंदिरों का निर्माण किया । चिदंबरं, तिरुवण्णामलै आदि क्षेत्रों के देवमंदिरों का पुनर्निर्माण कराके और कई नूतन मंदिरों का निर्माण करके कृष्णराय ने शिल्प-कला की अभिवृद्धि की ।

शिल्पकला के साथ साथ चित्रकला की अभिवृद्धि भी हुई है। लेपाक्षि के मंदिरों की दीवारों पर जो चित्र खिंचवाए गए हैं वे भारतीय चित्रकला में अपना एक विशिष्ठ स्थान रखते हैं ।

तंजाऊर और मधुरा राज्य :— ये दोनों राज्य विजयनगर के सामंत राज्य थे । इनके शासक नायकराजा अपने अंत तक आंध्र साहित्य का पोषण करते रहे । इनमें नायक कृष्णराय के भाई अच्युतराय का साला था । तमिल देश में इसकी अत्यंत प्रतिष्ठा थी । इसका पुत्र था अच्युतनायक । इसके समय तक आते ही विजयनगर का वैभव लुप्त प्राय रहा । मधुरा के राजा ने विजयनगर पर स्वतंत्रता प्रकट की । मधुरा और विजयनगर के परस्पर युद्ध में अच्युतनायक ने विजयनगर का पक्ष लिया ।

इस प्रकार एक और लड़ाई झगड़ा होने पर भी तंजाऊर राजा ने भाषा और चित्र कला का पोषण किया । तंजाऊर जिले में 2000 मंदिर हैं । इनमें से अधिक भाग नायक राजाओं द्वारा बनाए हुए हैं । इनमें बृहदीश्वरालय अत्यंत प्रसिद्ध है ।

अच्युतनायक का पुत्र रघुनाथनायक इन राजाओं में अत्यंत प्रमुख था । यह प्रसिद्ध विद्वांस था । कवि था । इसके दरबार में अनेक आंध्र कवि और स्त्री कवयित्रियाँ भी थीं । नृत्य और संगीत की इसके प्रोत्साहन से अत्यंत अभिवृद्धि हुई । रघुनाथनायक

रघुनाथनायक ने रुद पारिजातापहरण, गजेंद्रमोक्षण आदि भारत भागवत कथाओं को यक्षगान के रूप में लिखा । 'रघुनाथमेल' नामक एक संगीत ग्रन्थ भी लिखा । इनके गुरु गोविंद दीक्षित 'संगीतसुधा' नामक ग्रंथ और गोविंद दीक्षित का पुत्र यज्ञनारायण ने अनेक काव्यग्रन्थ लिखे । इस प्रकार उस काल में अनेक रचनाओं का सृजन हुआ ।

<u>आंध्र साहित्य का विकास</u> :– रघुनाथनायक का पुत्र विजयराघव नायक ने 'रघुनाथाभ्युदय' [illegible] लिखा । [illegible] तेलुगु का [illegible] है । इसके दरबार की रंगाजम्मा नामक लेखिका ने 'मन्नारुदास विलासमु' उषापरिणय, आदि यक्षगानों की रचना की । विजयराघवनायक के दरबार में 'क्षेत्रय्या' नामक संगीत विद्वांस थे । इनका जन्मस्थान कृष्णा जिले का मोव्वा था । इनके रचेगये शृंगार प्रधान जावली गीत 'मोव्वगोपाल पद' नाम से अत्यंत प्रसिद्ध हैं । क्षेत्रय्या के पद आजतक केवल आंध्र में ही व्याप्त हैं । क्षेत्रय्या [illegible] की तरह उसी राजदरबार में कंठीरवराजा और परदय्या आदि भी पद लेखक थे । विजयराघवनायक के बाद तंजाउर के राजा वैंकोजी के काल में त्यागराज थे । कर्नाटक संगीत के मूल मूल पुरुष त्यागराज हैं जो आंध्र हैं ।

<u>मधुरा के राजा</u> :– ई० सन् 1539 से ई०सन् 1736 तक लगभग 200 वर्ष आंध्र राजाओं ने मधुरा का शासन किया । इनमें से विश्वनाथनायक प्रथम थे । आखिरी महिला मीनाक्षी थी । मधुरा के अधिक मंदिर बनवानेवाले ये ही थे । नायकराजा के तिरुमलनायक के समय में भी शेषम कवि ने रुक्मिणीपरिणय, सत्यभामा सांत्वन आदि ग्रंथ लिखे । तंजावूरि वैंकटकृष्णप्पा ने अहल्यासंक्रंदन, राधिकासांत्वन नामक ग्रंथ और शेषमु वेंकटपति ने ताराशशांकमु नामक ग्रंथ लिखा है ।

पद्य रचना के अलावा गद्य का भी विकास इस काल में हुआ । विजयरंग चोक्कनाथ ने स्वयं श्रीरंगमहात्म्य, माघमहात्म्य आदि गद्य रचनाएँ कीं । मुद्दुपलनि इस काल की एक कवयित्री है।

मधुरा और तंजाऊर में रचे गये तेलुगु साहित्य के बारे में एक विषय उल्लेखनीय है । इसका तीन चौथाई भाग शृंगार साहित्य है । यद्यपि यह शृंगारपरक रहा है । राजाओं, वेश्या और विद्वान — इन तीनों के बीच में इस साहित्य की रचना हुई । मधुरा और तंजाऊर की जनता तमिलभाषा बोलती थी । यह साहित्य उनमें व्याप्त न हुआ। अब लोग इस साहित्य का पुनरुत्थान किया जा रहा है ।

कृष्णराय के काल में साहित्य में शृंगाररस का आविर्भाव हुआ, लेकिन वह कुछ हद तक रह गया । तंजाऊर मधुरा के साहित्य में वह विकृत रूप धारण करके अश्लील अरुचिपूर्ण बन गया ।

1-2-0 प्रबंध युग :-

ई0 15 शताब्दी के अंत तक आंध्र साहित्य में कहीं कहीं स्वतंत्र रचनाएँ होने पर भी उस काल की अनेक रचनाएँ संस्कृत से अनूदित थीं । बाद में पेद्दना जैसे कविगण पुराणों के इतिवृत्तों को लेकर वर्णनों से बढ़ाकर धीरोदात्त-नायक, शृंगार रस प्रधान और पंचसंध्यात्मक परिमित कथाओं को आलंकारिक शैली में लिखने लगे । ऐसी रचनाएँ प्रबंध कहलाती हैं । व्युत्पत्ति की दृष्टि से प्रकृष्ट छंद वाले किसी भी काव्य को प्रबंध कह सकते हैं । तिक्कना ने अपने रचे हुए भारत के अंश को प्रबंध कहा है, एर्रना ने अपने नृसिंहपुराण को प्रबंध नाम से व्यवहृत किया । नन्नेचोड, नाचन सोमन, श्रीनाथ, पिनवीरभद्र जैसे प्राचीन कवियों की रचनाओं में प्रबंध लक्षण दिखाई देते हैं । लेकिन उक्त काल में उन रचनाओं की संख्या अन्य रचनाओं की तुलना में बहुत कम है । ई0सन् 15 शताब्दी के बाद प्रबंधों की रचना विपुल रूप में होने के कारण यह युग (ई01500 से ई0 1800 तक) 'प्रबंध युग' नाम से विख्यात है । यह युग दो भागों में विभाजित किया जाता है — रायलयुग और नायक राज युग या दक्षिणांध्र युग ।

'अष्टदिग्गज' नाम से प्रसिद्ध महाकवियों को आश्रय देकर उनके द्वारा रसपूर्ण महाग्रंथों की रचना कराके आंध्र साहित्य में अपना यश सुवर्ण युग बना कर साहिती सार्वभौम श्री कृष्णदेवराय विख्यात हुए हैं । उन्होंने ई0 1509 से ई0 1530 तक विजयनगर साम्राज्य का शासन किया । संस्कृत में भोजराज की तरह आंध्र साहित्य की श्रीवृद्धि को पराकाष्ठा को पहुँचाने के कारण वह 'आंध्र भोज' सार्थक नाम से विख्यात है । वे कवि पंडितों के आश्रयदाता ही नहीं, स्वयं विद्वत्कवि थे । संस्कृत और आंध्र में प्रकांड पंडित भी थे । उनकी कृति 'आमुक्तमाल्यदा,' बहुत आज प्रसिद्ध है । इस प्रबंध के आमुख में अपनी रचनाओं का मदालसा चरित्र, सत्यवधूप्रीणन, सकलकथासार संग्रह ज्ञानचिंतामणी और रसमंजरी आदि संस्कृत ग्रंथों का उल्लेख किया, लेकिन ये अब उपलब्ध नहीं ।

कृष्णदेवराय की निजी कृति है आमुक्तमाल्यदा । इसमें गोदादेवी श्रीरंगेश्वरों का प्रणय वृत्तांत मुख्य वस्तु है । गोदादेवी की पहनी हुई मालाओं को बाद में श्रीरंगेश्वर को समर्पित करने के कारण वह आमुक्तमाल्यदा (आमुक्त छोड़ी गयी, माल्य- मालाओं को दा- देनेवाली) नाम से व्यवहृत हुई है । कृष्णराय ने सहजरूप से वैष्णवधर्माभिमानी होने के कारण उस धर्म के प्रचार केलिए आमुक्तमाल्यदा में प्रसंगवश विष्णुपारम्यपरक कई उपाख्यानों को जोड़ दिया । खांडिक्य केशिध्वजोपाख्यान, यामुनाचार्यचरित्र, मालदासरि कथा उनमें सुप्रसिद्ध हैं । "विपुल राजनीतिपरक वर्णन, सुदीर्घ ऋतुवर्णनों से अंतिम दो आश्वासों को छोड़कर शेष प्रबंध की कथा-वस्तु का भंग हुआ " ऐसा कहाजाता है । प्रबंध की कथा-वस्तु का परिपाटि की दृष्टि से यह छोटा विष्णुपुराण-सा लगता है । आमुक्तमाल्यदा की शैली बहुत प्रौढ़ है । दीर्घ समासों के अतिरिक्त वाक्यप्रयोजना में उसने संस्कृत भाषा परंपरा का अनुसरण किया । आंध्र साहित्य में इसने उत्तम स्थान को प्राप्त किया ।

कृष्णराय के दरबार में अष्टदिग्गज नाम से विख्यात आठ कवि थे । यह नहीं कहा जा सकता कि वे सब आंध्र कवि थे । उनमें स्वरोचिष मनुचरित्र कर्ता अल्लसानि पेद्दना मुख्य हैं । इनकी शैली प्रौढ, धारणाशुद्धि शोभित और लोकोक्तिपूर्ण है । '' अल्लसानि वानि अल्लिक जिगि बिगि '' यह उक्ति सार्थक हुई । पेद्दना की प्रकृति-परिशीलना शक्ति, सहजवर्णन की पटुता, भावना शक्ति अद्वितीय हैं । वर्णन में रसानुकूल शब्दालंकार योजना, छंदों की विचित्रता प्रदर्शित की गयी । मानवहृदय के विविध संघर्षों को व्यक्त करने में वह पटु है । कृष्णराय से 'गंडपेंडेर' को प्राप्त किया है ।

अष्टदिग्गज के दूसरे कवि नंदितिम्मना हैं । उनको 'मुक्कु तिम्मना' भी कहते हैं । उनकी रचना पारिजातापहरण अत्यंत प्रसिद्ध है । रचना श्रृंगार रस पूर्ण है और प्रबंधोचित सभी वर्णन हैं । शैली मृदु मधुर है, जिसमें पुष्पदल से मकरंद प्रवाह की तरह रचना चलती है । इसलिए 'मुक्कुतिम्मनार्यु मुद्दुपलुकु' सूक्ति प्रचलित हुई । इसके वर्णन भावगंभीर होकर औचित्यपूर्ण हैं । ललित श्रृंगार भावों को रसानुकूल शैली में मनोहर वर्णन करने में तिम्मना सिद्धहस्त हैं ।

अष्टदिग्गजों का तीसरा कवि मादयगारि मल्लना है । इसने राजशेखर चरित्र नामक प्रबंध की रचना की । राजशेखर और कांतिमती का विवाह इसकी कथावस्तु है । कथा-कल्पना में विचित्रता दिखाई नहीं देती । खासकर बल्ल तोते का राजशेखर और कांतिमती के बीच दूतत्व अत्यंत मनोहर है । परिमाण में छोटे हुए भी यह प्रबंध बहुत रसपूर्ण है । वर्णन छोटे छोटे और औचित्यपूर्ण हैं । शैली प्रसादगुण पूर्ण है ।

'' स्तुतिमतियैन आंध्रकवि धूर्जटि पल्कुल केगती नी अतुलित माधुरी महिम '' ऐसा कृष्णराय से प्रशंसित धूर्जटि महाकवि अष्टदिग्गजों में एक है । इसकी कृति श्री कालहस्तिमाहात्म्य क्षेत्रमाहात्म्य परक प्रबंध है । कुछ पंडितों का अनुमान है कि श्रीकालहस्तीश्वर शतक इसकी रचना है कि नहीं लेकिन कविता शैली की दृष्टि से ऐसा लगता है कि यह

अष्टदिग्गजों में पिंगलि सूरनार्य एक हैं । राघवपांडवीय, कलापूर्णोदय और प्रभावती-प्रद्युम्न इनकी रचनाएँ हैं । राघवपांडवीय द्व्यर्थक काव्य है । इसमें रामायण और भारत की कथाएँ सम्मिलित हैं । कलापूर्णोदय सूरनार्य की अमर कलाकृति है । इसकी कथा उपज्ञ है । उस समय तक उपज्ञ कथावस्तु से किसी ने प्रबंध की रचना नहीं की । कलापूर्णोदय शृंगार रस पूर्ण होकर विविध मनः प्रवृत्तियों का द्योतक है । 'इसकी कई घटनाएँ अंग्रेजी नाटक 'कामेडी आफ एरर्स' की घटनाओं से मेल खाती हैं' यह समालोचकों का मत है । श्रीकृष्ण का पुत्र प्रद्युम्न और वज्रनाभ राक्षस की कन्या प्रभावती का विवाह 'प्रभावती प्रद्युम्न' की कथावस्तु है । सूरनार्य की शैली असाधारण है ।

'रामराजभूषण' बिरुदनामवाले भट्टमूर्ति अष्टदिग्गजों में है या नहीं इस विषय में संदिग्ध है । वसु चरित्र और प्रतापरुद्र यशोभूषण इनकी रचनाएँ हैं । दूसरा लक्षण ग्रंथ है । वसुचरित्र में कवि की प्रतिभा सुव्यक्त है । वसुराजा और गिरिकन्या का विवाह कथावस्तु है । कविता पांडित्य प्रदर्शन में भावोज्वलता में रस निर्वाह में, श्लेष अलंकार रचना में कवि की प्रतिभा अनन्य साधारण है । कहीं कहीं सूक्ष्मकाव्य लक्षण परिलक्षित हैं । प्रकृति वर्णन सहज सुंदर है, शैली प्रौढ होकर मृदु मधुर संगीत के अनुकूल है । आंध्र साहित्य की रत्नमाला की नायकमणी है वसुचरित्र । संस्कृत में अनूदित होने से इसका मूल्य सूचित है ।

अष्टदिग्गजों में प्रसिद्ध कवि है तेनालि रामकृष्ण । इनके चाटु काव्य, और हास्योक्तियाँ आंध्र देश में प्रसिद्ध हैं । उद्भटाराध्य चरित्र और पांडुरंगमहात्म्य इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं । इनकी शैली अत्यंत प्रौढ है । गंभीर भावाभिव्यक्ति और रसानुकूल पद विन्यास में रामकृष्ण अत्यंत समर्थ है । पांडुरंगमहात्म्य वैष्णव भक्ति परक प्रसिद्ध कांकुली प्रबंध है ।

कृष्णराय के समकालीन कलाकवियों में संकुसाल नृसिंहकवि एक है । कवि कर्ण रसायन इनका शृंगार प्रबंध काव्य है । कवि का कहना है कि अपने काव्य के शृंगार

वर्णनों के सुनने से संन्यासी परक बनता है और वैराग्यपूर्ण वर्णन सुनने से कामुक सन्यासी बनता है जोभी हो, कवि की प्रतिभा अद्वितीय है ।

आंध्र साहित्य जगत् की कवयित्रियों में आतुकूरि मोल्ला प्रथम स्थान रखती है । काव्य की पुराण कविकृति में शिवाय की स्तुति करने से वह प्रबंध युग में आती है । उसकी रचना ' मोल्ल रामायण ' अत्यंत प्रसिद्ध है । शैली मृदु मधुर है । प्रबंधोचित सभी वर्णनों से युक्त और अलंकारों से परिपुष्ट है । औचित्य पोषण में वह सिद्धहस्त हैं । उसकी कविता में गति है ।

इसी प्रकार इस युग के कई एक कविगण हैं जिन्होंने आंध्र साहित्य क्षेत्र को अपनी रचनाओं से सुसज्जित किया है ।

1-3-0 आंध्र साहित्य में शतक परंपरा का उद्भव और विकास :-

यद्यपि सभी साहित्यों में शतक की रचना परंपरा होने पर भी आंध्र भाषा में उसका एक उल्लेखनीय स्थान है । आंध्र साहित्य में करीब 500 शतकों की गयी है । शतक की रचना कवि के कवितावृत्तास को बढाने केलिए की जाती है । आंध्र भाषा में शतक रचना परंपरा ई0 12 वी सदी से चालू है

शतक की रचना पद्यों में या श्लोकों में होती है जिसमें एक सौ पद्य या श्लोक होते हैं । कुछ लोग एक सौ आठ भी लिखते हैं । संस्कृत और प्राकृत के त्रिशति पंचशति, सप्तशती (सतसई) आदि इसी कोटि के अंतर्गत आते हैं । साधारणतया शतक की रचना भगवत्स्तोत्रपरक होती है । ऐसे स्तोत्र ऋग्वेदकाल से ही मिलते हैं । ऋग्वेद इन्द्र, अग्नि, सूर्य, वरुण आदि देवताओं के स्तोत्रों का संकलन । संस्कृत के मयूरविरचित सूर्यशतक, भर्तृहरि कृत सुभाषित त्रिशति, शंकराचार्य कृत शिवानंदलहरी शतक की कोटि में आते हैं । प्राकृत में हाल रचित गाथा सप्तशति सात शतकों का समाहार रूपमात्र है । इसी प्रकार अंग्रेजी में तामिल और कन्नड में शतक और

शतक जैसी रचनाएँ भी मिलती हैं ।

शतक भगवत्स्तोत्रपरक प्रधान रचना है । प्रत्येक पद्य के अंत में मुकुट या तुक होती है । यह प्राय: भगवत्संबोधन के रूप में होता है । शतक साधारणतया कवि के मनोभावों को प्रकट करनेवाले होते हैं । भक्तिपरक शतकों में कवि आत्मपरिशीलन करके उन दोषों को मिटाने के लिए भगवान से प्रार्थना करता है । कुछ शतकों में कवि तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन करता है । कई शतकों में नीति और धर्म आदि तत्व उपदेश के रूप में व्यक्त होते हैं । शतक की रचना सामान्यत: एक ही छंद में होती है ।

"महाभारत का कृतिकर्ता नन्नया के पूर्व में आंध्र में देशीमार्ग संबंधी कविता होती थी। लेकिन उसका आधार अबतक अनुपलब्ध है । महाभारत के उदंकोपाख्यान में उदंक नागराजा की स्तुति करते समय "नाकु प्रसन्नुलय्येडुनु" तुकवाले तीन पद्य मिलते हैं । इसी प्रकार नन्नेचोड ने कुमार संभव में स्तुतिपूर्वक पद्यों को दो ही स्थलों में लिखा है । उनमें 'वारिज-पिशाचना' तुकवाले पद्य बहुत प्रसिद्ध हैं । शंभमतावर्य मल्लिकार्जुन पंडित ने 'आत्म, रुद्र, शिवा' तुकवाले पद्यों की रचना की है। ये शिवतत्व सार नाम से विख्यात है । ऐसा भी कहा जाता है कि मल्लिकार्जुन पंडित शिवतत्वसार के अतिरिक्त "श्रीगिरिमल्लिकार्जुन शतक की रचना की है । जो भी हो तेलुगु में मल्लिकार्जुनपंडित ही प्रथम शतककर्ता माना जाता है । इस प्रकार आंध्र में कई एक कवि ने अपने अपने इष्टदेवों को संबोधित कई शतकों की रचना की है ।

आंध्रशतकों को चार भागों में विभाजित किया जाता है । वे इस प्रकार हैं — नीति शतक, भक्ति शतक, व्याजस्तुति शतक और वेदांतात्मक । नीति शतक, सर्वजनों के लिए हितकारी होकर पाठकों को सुधार करनेवाले होते हैं । भक्ति शतक में कवि अपने इष्टदेव के प्रति होनेवाली भक्ति को प्रकट करता है । व्याजस्तुति शतक में कवि निंदा और व्याज के द्वारा उन उन देवताओं की महिमाओं की स्तुति करता है । वेदांतपरक शतक में दुरूह तथ्य वेदांत विषयों का सुलभ शैली में पाठकों को उपदेश किया जाता है ।

1) <u>नीति शतक</u> :-

इस तरह के शतकों में नीति परक रचनाएँ आती हैं । इनमें लोक के विविध व्यक्तियों से संबंधित, पूर्वजों और लोकानुभव के आधार पर नीति का प्रबोध होता है । इनमें राजनीति, गृहनीति, लोकनीति और प्रवृत्तिनीति प्रमुख हैं । सुमतिशतक, प्रतिविभूमधाचार्य कृत वेंकटेश्वर शतक, शरभांकलिंग शतक, मारदवेंकय्यकृत नीतिभास्कर शतक, [illegible]श्वर शतक, वराहगिरि [illegible] रचित जगन्नायक शतक अत्यंत प्रसिद्ध हैं । [illegible] नाम से प्रसिद्ध अडिदमु सूरकवि विरचित रामलिंगेश शतक अत्यंत उपदेशात्मक है । "विश्वदाभिराम विनुरवेम" कहलानेवाले वेमना शतक अत्यंत लोक प्रसिद्ध है । इसमें व्यापक विषयों में अधिक वैविध्य है, लेकिन नीति संबंधित पद्य अति मुख्य और सर्वजनादरणीय बन गये हैं ।

2) <u>व्याजस्तुति शतक</u> :- इस तरह की रचना अति विचित्र प्रकार की है । इसके प्रत्येक पद्य में स्तुति में निंदा होती है या निंदा में स्तुति । देश के आततायियों के दुष्टात्माओं के अत्याचारों से पीड़ित होते समय उनके उद्धार केलिए भगवान से प्रार्थना करते समय इस तरह की रचनाएँ होती हैं । कवि के कटुवचन प्रत्यक्षरूप से भगवान के निंदा करनेवाले से दिखाई देते हैं, लेकिन वास्तव में भगवान्के स्तुतिपरक हैं । इनके अंतरंग में भक्ति भावना आच्छादित होती है । इनके द्वारा देश के विभिन्न कालों की परिस्थितियों की जानकारी मिलती है । इस तरह की रचनाओं में गोगुलपाटि कूर्मनाथ विरचित सिंहाद्रिनारसिंह शतक, भल्ला पेरय्या रचित भद्रगिरि शतक, आंध्रनायक शतक (कासुल पुरुषोत्तम विरचित) आदि अत्यंत प्रमुख हैं । इन सब में भगवान् की महिमा और उदारता निगूढरूप से प्रकाशित की गयी हैं ।

3) <u>तत्वशतक</u> :- उपनिषदों में निरूपित तत्व विषय अत्यंत निगूढ और सामान्य जनों केलिए दुर्ग्राह्य होते हैं । इसलिए कुछ कवियोंने उन विषयों को सर्वजन सुलभ होने

2 · 0 · 0

धूर्जटि की संक्षिप्त-जीवनी एवं कृतियों का विश्लेषण

३·०·० : कार्य-विषय

द्वितीय अध्याय

-: महाकवि धूर्जटि :-
(संक्षिप्त-जीवनी एवं कृतियों का विश्लेषण)

2-1-0 संक्षिप्त जीवनी :-

तेलुगु साहित्य का प्रबंध युग सन् 16 वीं सदी से प्रारंभ हुआ । श्रीकालहस्ति-माहात्म्य का रचयिता महाकवि धूर्जटि 16 वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में थे । विजयनगराधीश श्रीकृष्णदेवराय के समकालीन थे और उनके दरबार में भी रहते थे । धूर्जटि कृष्णराय के प्रीतिपात्र कवि बनगये थे । धूर्जटि का जन्म पाकनाटि आर्वेल नियोगि ब्राह्मण वंश में हुआ था, आपस्तंब सूत्र का, भारद्वाजगोत्र का था । पिता का नाम जक्कय-नारायण था और माता का नाम सिंगमरमानारायण । धूर्जटि प्रबंध कवि थे । श्रीकृष्णराय के दरबार में अष्टदिग्गजों में मनुचरित्र कृति कर्ता पेद्दना' पारिजातापहरण के कर्ता तिम्मना और पांडुरंगमाहात्म्य के कर्ता तेनालि रामकृष्णराय के समकालीन कहलाने में कुछ संदेह नहीं , क्यों कि स्वयं कृष्णराय ने भी उनकी स्तुति इस प्रकार की थी —

" स्तुतिमतियैन यान्ध्र धूर्जटि पल्कुल कैल
यतुलित माधुरी महिम . . . . . . "
(— आ०प्र० साहित्य एकादमी 1968 -पृ014)

भावार्थ यह है कि प्रशंसनीय आंध्रकवि धूर्जटि को अपनी मीठी बोली को अनुपम माधुरी कैसे उपलब्ध है ।

प्रस्तुत प्रबंधकर्ता श्री धूर्जटि श्री कालहस्तीश्वर के परम भक्त थे । आश्वासांत गद्य से इस बात की पुष्टि होती है । " इदि श्रीमत्कालहस्तीश्वर चरणकमल सेवा पराजय सिंगमरमानारायण जक्कयनारायण तनूजव भवराङ्मुख धूर्जटि कवि प्रणीतंबैन "

कुमार धूर्जटि ने अपनी कृति श्री कालहस्तीश्वर माहात्म्यम् में कृत्यादि पद्यों में धूर्जटि की महिमा की स्तुति की थी ।

ही धूर्जटि ने 'श्रीकालहस्तीश्वर माहात्म्यमु' में अपने अन्य कृतियों के बारे में कोई सूचना नहीं दी । इन दोनों रचनाओं का पौर्वापर्य संबंध निर्धारित करना मुश्किल है । लेकिन यह अनुमान होता है कि शतक की रचना पहले हुई और माहात्म्यमु बाद में, क्योंकि उस जमाने की परंपरा के अनुसार कोई भी कवि पहले शतक की रचना करते थे और प्रबंध को बाद में । इस अनुमान से इस बात की पुष्टि होती है कि शतक की रचना नियम रहित से होती है, भाषा, भाव और शैली में कवि सर्व स्वतंत्र होता है । लेकिन प्रबंध की रचना ऐसी नहीं । प्रबंध की रचना में कवि को बहुत से नियमों का पालन करना अनिवार्य होता है । उन नियमों का पालन करना अनिवार्य होता है । उन नियमों का पालन करते हुए कवि को प्रबंध की रचना करना पड़ता है । ये नियम प्रस्तुत कवि धूर्जटि में भी देख पड़ते हैं । भाषा, शैली और भावानुभूति से यह स्पष्ट होता है कि शतक की रचना में धूर्जटि की रचना पद्धति स्वतंत्र रूप में हुई, लेकिन इसके संगमन विविध नियमों में दृष्टिगोचर होता है । इन दोनों कृतियों की तुलना में धूर्जटि की मनः प्रवृत्ति में अंतर दीख पड़ता है ।

शतक की कृति धूर्जटि की है या नहीं — इस के संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं । धूर्जटि ने भी अपनी रचना श्रीकालहस्तीश्वरमाहात्म्यमु में उनकी अन्य रचनाओं के बारे में कुछ भी नहीं उद्धृत किया । धूर्जटि लिंगाराजु कवि ने भी केवल 'माहात्म्यमु' को ही उद्धृत किया । लेकिन कस्तूरी रंगकवि ने अपनी कृति 'आनंदराट्छंद' में लिखा है कि श्रीकालहस्तीश्वर शतकमु धूर्जटि की कृति है । इसके अनुसार और जनश्रुति के अनुसार यह मानना उचित है कि शतकमु धूर्जटि की कृति है । इतना ही नहीं, शतक की भाषा, भाव, शैली और रचना पद्धति माहात्म्यमु की रचना

पद्धति से मेल नहीं खाती है । अतः इसमें कुछ संदेह नहीं कि शतकम् धूर्जटि की कृति है । इन दोनों कृतियों के अतिरिक्त धूर्जटि की कई अन्य कृतियाँ हुई होंगी लेकिन वे अप्राप्य हैं ।

2-3-0 कृतियों का पौर्वापर्य विमर्श :-

धूर्जटि के शतकम् और महात्म्यम् के रचनाकाल का पौर्वापर्य संबंध के विषय में उल्लेखनीय है । कुछ पंडितों का कथन है कि शतक की रचना पहले हुई और प्रबंध की रचना बाद में तो कुछ अन्य कवि इस के विपरीत प्रबंध की रचना पहले होने का समर्थन करते हैं । पहले मत के अनुसार शतक में कवि ने राजाओं का दूषण बहुत करके बाद में परिपक्व मनस्क होकर प्रबंध की रचना की होगी । लेकिन दूसरे वर्ग के पंडितों का कहना है कि धूर्जटि पहले से ही ऐहिक सुखों से विमुख होकर निर्भीक राजाओं का यह सुचित दूषण किया होगा । जैसे —

" राजुल्मत्तुलु वारिसेव नरक प्रायंबु वारिच्चु नी
चौजावी चतुरंत यान तुरगी भूषावलात्म व्यथा
बीजंबुल् तदपेक्ष चालु परितृप्ति बोंदितिन् ज्ञान ल
क्ष्मी जाग्रत्परिणाम मिम्मु दयतो श्रीकाल ----रा"

(धूर्जटि : शतक — पद्य संख्या = 18)

इससे कवि की ऐहिक सुखों की विमुखता और वैराग्य की सूचना मिलती है । उक्त पद्य में कवि भगवान् से 'ज्ञानलक्ष्मी' की याचना करता है । इससे यह स्पष्ट मालूम होता है कि कवि का लक्ष्य ज्ञान समुपार्जन है न कि ऐहिक भोग वस्तु समुपार्जन । कवि की मानसिक प्रवृत्ति शतक रचना काल तक ही तीव्र वैराग्य की परिणति को प्राप्त हुई है , मोक्ष की प्राप्ति ही उनके जीवन का परम लक्ष्य है। धूर्जटि का मत है कि कविगण सामान्यतः धन समुपार्जन केलिए राजा की अनुकंपा को प्राप्त करना

चाहते हैं और ऐसी परिस्थिति में उन्मार्गवृत्त होकर रहना सहज स्वभाव है । इसलिए कविने ऐसी भवबंधप्रवणताओं से दूर रहने की प्रवृत्ति केलिए शतक में भगवान से याचना करता है ।

" अलुबिबड्डलि दसिरदंबुलु धनंबुन्मडायंबनं
पैला नागेट गट्टनाड चिक निन्नैवेल जितितु नि
र्मूलंबैन मनंबुलोन गड्डु दुमेहिप्पिलो बुद्धि यी
लीलाजालमु जिल मेट्लुडिपैदो श्री का.... रा "

(श्रीकाल -- शतक, पद्य संख्या = 9)

प्रबंध रचनारंभ में कवि की कविता प्रवृत्ति की परिणति अलग है । उस समय तक यह ज्ञानप्रतिपादित पंचाक्षर्यादिक मंत्रानुष्ठान से पार्वतीपरमेश्वराराधना में परिनिष्ठित होकर मोक्षमार्गानुगामी होगया । इस अनुमान की पुष्टि नीचे के पद्यों से स्पष्ट होती है । कवि महात्म्य के प्रारंभ में लिखता है :

" श्रीविद्यानिधि यै महामहिमचे जेन्नै, परिव्राज गु
ता वातावान साम जा-चिक गौत्रादेव नत्वीर रा
जीवाक्षी युग पादवाविपुलकु श्रेयस्करंबैन या
पांचाक्षरमु, दिव्यलिंगमु मदीयाभीष्टमुल् सल्पेडुन् "

(कालहस्ति महात्म्य - आश्वास 1, पद्य संख्या =1)

अन्य पद्यों में भी यही भावना स्पष्ट परिलक्षित है ।

" ई संसारमु, दुःखा
वासानंदंबु, [illegible] वीनि नार्जिंपग,
मै सुखमु गलुगु, दय म
न्ना सुख मुन गूर्पवे । कालहस्ति नगुदुन् । "

(महात्म्य - आश्वास 3, पद्य संख्या=22)

"अनि प्रार्थिंपग भक्तवत्सल, मविद्या सूत्रदात्रंबु, नी
पद वेदांतर वर्तरीमुखंबु, कैवल्यार्थ दानमुता
शान रत्नंबु, सुधारसूततनया जांपत्य संपन्न पद
वनगार्थंबु, कालहस्तिपुरदेव निच्चे सान्निध्यमुन् ;"

(कालहस्तिमहात्म्य - आश्वास 3, पद्य संख्या 222)

इससे यह स्पष्ट मालूम होता है कि कवि का प्रधान लक्ष्य केवल मोक्ष प्राप्ति या कैवल्य प्राप्ति है । शिवाद्वैतभावना उनकी कविता प्रवृत्ति का सार है । श्री शंकराचार्य कृत शिवानंदलहरी में प्रतिपादित विषय उनके शतक के कई एक पद्यों में आ सके हैं ।

2-4-0 <u>कवि की विचारधारा</u> :-

ऐसा जान पड़ता है कि धूर्जटि पहले पहल श्रीविद्योपासक था । इसी कारण महात्म्य के मंगलाचरण पद्य में 'श्रीविद्यानिधये' शब्दों से काव्य का आरंभ किया है। इतना ही नहीं श्रीविद्या से संबंधित तांत्रिक विधान अनंतर पद्यों में प्रकट किया गया है । लेकिन कालांतर में महादेशिक सार्वभौम नामक सद्गुरु की कृपा से योगाभ्यास करता है और अद्वैतालंबन करके विरागी होकर मोक्ष कामी साधक बन गया है। इस तथ्य की सूचना महात्म्य के कई पद्यों में मिलती है ।

"भागवंबुलु शीलुपतुलु जगद्वंद्युंडु नद्वैत वि
द्यागोविन्द् पिचरिंप नीववरुड पजा........"

(कालहस्ति महात्म्य-प्र0 आ0 पद्य सं0 7)

" अनुपम गौवरु शूलिलु मनिवर्तिंतुन् "

(कालहस्ति महात्म्य, प्र0 आ0 पद्य संख्या : 9)

और प्रीति है । अपनी कविता कन्या के वर के रूप में शिव को ही चुनलिया है । इतना ही नहीं, अपनी कविता को किसी को न देने की प्रतिज्ञा भी की है । जैसे —

" नीकुँगानि कवित्व मेव्वरिकि ने नीनंबु मीदेत्तिनिन्
जोलीदि विरुवंबु कंकणमु मुन्ने गट्टितिन् कट्टितिन्
लोकुल्मेच्च व्रतंबु नातनुवु कीलुन् नेर्पुलुंगावु छी
छी कासंबुल रीति दव्वेडु नुमी श्रीकालहस्तीश्वरा "

(शतक : पद्य संख्या = 114)

प्रबंधरचना काल तक आते आते धूर्जटि का मन कैवल्यप्राप्ति की ओर आकृष्ट है । इनकी रचनाओं से यह मालूम होता है कि शिवाद्वैत भावना कविता की मूलप्रवृत्ति है । शंकर के अपरावतार श्री जगद्गुरु शंकराचार्य की शिवानंदलहरी में प्रतिपादित अनेक विषय श्रीकालहस्तीश्वर शतक और माहात्म्यम् में भी अंकित दृष्टिगोचर हैं । उदाहरण के लिए —

" करस्थे हेमाद्रौ गिरिश निकटस्थे धनपतौ
गृहस्थे स्वर्भूजामरसुरभि चिंतामणिगणे
शिरस्थे शीतांशौ चरणयुगलस्थे अखिल शुभे
कमर्थं दास्ये त्वां भवतु भवदर्थं मम मनः "

(शिवानंदलहरी– श्लोक संख्या : 27)

इसी भाव को प्रकट करनेवाले शतक के एक पद्य को देखिए :

"निविक्कमणुधेनुरत्न घनभूति प्रस्फुरद्रत्न सा
नुवु नी विल्लु निधीश्वरुंडु सखुडन्नंबु कन्याविभुं
डु विशेषार्चकुडिंक नी केन पनुल्गुंगलु ने नीवु गु
वि विचारिपवु लेमि नेन्न दुड्डुल् श्री कालहस्तीश्वरा "

इतना ही नहीं माहात्म्य में काल (सर्प) और हाथी ये दोनों प्राणियों के परमेश्वर की स्तुति में भी अद्वैत भाव परक दार्शनिकता स्पष्ट परिलक्षित होती है । जैसे —

" कोंदरु सोऽस्मानि यद्वैताकुंठितबुद्धिन्निनु भाविंतुरु
कोंदरु दासोऽस्मानि भक्तिनि गुणवंतुनिगा निनु सेविंतुरु
कोंदरु भू मंत्ररहस्यमवनि निनुगोरि मदाजपनिष्ठित नुतिंतुरु
कोंदरु हठयोगविधाकृतिवनि कुंडलिये मरुतगु धारिंतुरु
भवदुर्वासन पायदु श्रीपदकंजमुल हृदयमु भाविंपक "

— (कालहस्तिमाहात्म्यम् : आ० 2, पद्य सं० 152)

भव दुर्वासना को मिटाने केलिए अपने हृदय को परमेश्वर के चरणकमल का भ्रृंग सुगंधिलेप बनाकर उस परम लक्ष्य की प्राप्ति केलिए 'श्रीकालहस्तीश्वर माहात्म्यम्' की रचना को एकमात्र उपकरण बनादिया है , ऐसा मालूम होता है ।

जो भी हो, इनकी कृतियों से यह स्पष्ट होता है कि इनका मन भवबंधों का उच्छेद कर परमेश्वर में मिलने केलिए छटपटाता है ।

1-5-0 धूर्जटि के प्रति एक लोकापवाद :-

" धूर्जटि वेश्यालंपट है " ऐसा एक लोकापवाद संसार में फैला हुआ है। कई इसे विश्वास करते भी हैं । लेकिन इस अपवाद का मूल क्या है ? हमें जानना चाहिए ।

हम जाने हैं कि धूर्जटि पहले श्रीविद्योपासक था और बाद में महावैदिक सार्वभौम की कृपा से योगाभ्यास करके मोक्षासक्त बने ।

श्रीविद्या सर्वजन वशीकरण समर्थ शक्ति है । जो इस विद्या की परीक्षा

में जरा उतरता है वह पूर्णपुरुष कहलाता है और मोक्षलक्ष्मी की प्राप्ति पाती है ।
लेकिन उपासक अगर नियमोल्लंघन करके स्वच्छावादी बने तो अधः पतित होता है ।

इस सिद्धांत के आधार पर कुछ लोग शंका करते हैं कि धूर्जटि ऐसी विकराल स्थिति में प्रसित हुआ तो गया हो । इसका एक आधार हमें प्रश्नरूप में मिलता है ।

श्रीकृष्णराय ने एक दिन सभा में एक प्रश्न पूछा है कि " स्तुतिमति चैन आंध्रकवि धूर्जटि पल्कुलकेल गल्गेनो, यतुलित माधुरी महिम " –

सभा में यह प्रश्न समस्या रूप धारण करता है और तब तेनालि रालिंग कवि उस समस्या की पूर्ति इस तरह करता है कि इसका कारण यही कि धूर्जटि वेश्या लोलुप है । वेश्याओं जिनका मधुर अधरों के सुधारस का परिज्ञान है । जैसे –

" ..... हा तेलेसेन् भुवनैक मोहनो
द्यत सुकुमार वारवनिता ? जनिता घनतापहारि सं
तत मधुराधरोदित सुधारस धारा ग्रोलुट जुमी । "

इस समस्या के आधार पर बहुतेरे लोगों के मन में धूर्जटि की वेश्यालोलुपता की शंका ने घर बना लिया है । वे मानते हैं कि वेश्यालंपट होने के कारण ही धूर्जटि की कविता माधुर्यपूर्ण बनगई। लेकिन, यह सच्ची बात नहीं, धूर्जटि की कविता सहज ही माधुर्यपूर्ण है । इसका कारण उनके हृदय में रहनेवाली भगवद्भक्ति ही है । जो लोग इस सत्य को नहीं जनते, वे इसे नहीं मानते । साधारणतया मानव का मनोविज्ञान ~~का~~ ऐसा होता है कि भलाई की अपेक्षा बुराई का ही शीघ्रता से ग्र ग्रहण किया जाता है । ऐसी मानसिक स्थिति में ही इस अपवाद को सत्य माने की गुंजाइश है । अगर धूर्जटि की कविता माधुरी को इस समस्या के कारण ही माना जाय तो एक और विप्रतिपत्ति उपस्थित हो जाती है । वह यह है कि जो लोग वेश्यालंपट होते हैं, माधुर्यपूर्ण कविता करनेवाला महानुभाव बनेंगे । लेकिन संसार में ऐसा नहीं

नहीं हो रहा है। यह केवल मिथ्या धारणा है। लेकिन कई लोगों का विचार है कि धूर्जटि ने स्वयं अपनी भोगलालसाता व्यक्त की है। उनके कथन का आधार है शतक का एक पद्य (संख्या 14) है। "कायल्गाचे वधू नवभ्रमुलचे"। इस विचार के समर्थन में राजशेखर कवि के एक श्लोक का उल्लेख करना अनुचित न होगा। कैनेंद्र से उद्धृत राजशेखर का श्लोक यह है –

"कर्णाटी दशनांकितः, शितमहाराष्ट्री कटाक्षाहतः
प्रौढांध्रीस्तनपीडितः प्रणयिनीभ्रूभंगवित्रासितः
लाटीबाहु वेष्टितश्च, मलयस्त्री तर्जनीतर्जितः
सोऽयं संप्रति राजशेखरकविः वाराणसीं वांछति।"

इस श्लोक का भाव यह है कि राजशेखर कवि उन उन राष्ट्रों के रचाओं का वर्णन करके, उनके आतिथ्य का अवलोकन कर, परितृप्त होकर, अंत में विरक्त बनकर वाराणसी जाता है न कि विविध राष्ट्रों की स्त्रियों के संपर्क में आता है। यह आलंकारिक रूप में कहा गया है, यथार्थ नहीं।

अतः धूर्जटि पर ऐसा मिथ्यारोपण करना अनुचित है। शतक के "कायल्गाचे वधू नवभ्रमुलचे" पद्य कुछ विचारणीय है। इसमें व्यक्त विचार स्वीय भार्या परक है, नकि वारवनिता परक। जब मानव संसार की उलझनों से विरक्त होता है, तब वह संसार की असारता को हेय मानकर भगवान् के सामने उसी हेयता को प्रकट करता है। उक्त पद्य भोक्तार्थी धूर्जटि भगवान् के सामने अपनी दीनता को प्रकट करते हुए शापपूर्ण ग्लानि सूचक मात्र है।

धूर्जटि की माधुर्यपूर्ण कविता का कारण भगवान् के प्रति उसके हृदय में रहनेवाली अपार भक्ति भावना है। अगर हम उनके शतक और माहात्म्य को दार्शनिक

तृतीय अध्याय

वर्ण्य-विषय

3.1.0 : श्री कालहस्तिमाहात्म्यम् कथावस्तु :—

धूर्जटि की कृति श्रीकालहस्तिमाहात्म्यम की मूल कथा के संबंध में कुछ मतभेद है। धूर्जटि के प्रपौत्र लिंगराजु ने अपने ग्रंथ कालहस्ति माहात्म्यम् में यों लिखा है :

चिनु कालहस्ति महिमं

बनुपम मैं वेलयु मुनु षडध्यायि कथन्

दैनुगुन काव्यमुग नोन

र्चेनु पेद धूर्जटि कवींद्र शेखरु डनन।

— कालहस्ति माहात्म्य: पृष्ठ :111

अर्थात् षडध्यायी कथा को तेलुगु में काव्य रूप में पेद धूर्जटि ने रचा है। इस से यह मालूम होता है कि धूर्जटि कवि कृत कालहस्तिमाहात्म्य का मूल पुराणों की षडध्यायी कथा है। इस षडध्यायी कथा को धूर्जटि ने चार आश्वासों में प्रबंध के रूप में लिखा है। लेकिन यह स्पष्टतः नहीं मालूम होता है कि इसका संस्कृत मूल क्या है। इसका मूल तमिल की कालहस्ति कथा होगा या नहीं इसकी ओर ठीक विवेचना करनी चाहिए। इस में प्रबंधोचित सभी वर्णनों का समावेश है। कालहस्तीश्वर के माहात्म्य की पुष्टि करनेवाली कथाएँ —— वशिष्ठ, ब्रह्मा, लूता (मकड़ी), सांप, हाथी, कन्नप्पा, शिवब्राह्मण, नत्कीर, वेश्या बालिकाएँ और यादवराजा इस

में विद्यमान हैं। ये कथाएँ कविगत कविता चमत्कार और भावाभिव्यंजना को बढाने वाली हैं। ग्रंथ में श्रृंगारादि विविध रसों का समावेश है।

इस काव्य के निर्माण में कवि का मुख्य उद्देश्य मोक्ष संसाधक भक्तिभाव है। इसके द्वारा सभी वर्ण्य विषय परमेश्वर से संबद्ध हैं। फिर उपमानोत्प्रेक्षादि सभी अलंकार भी परमेश्वर से संबंधित अंश हैं।

कथा का विकास :—

यह प्रबंध प्रधानरूप से क्षेत्र माहात्म्य प्रतिपादक है। श्री कालहस्तीश्वर के भक्त जनों का उद्धार इस प्रबंध की मुख्य प्रतिपाद्य वस्तु है। कवि की दृष्टि उस माहात्म्य के प्रतिपादन में ही केंद्रीकृत है। कथा तो केवल एक साधन मात्र है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि प्रबंध की कथा में वस्तु की एकता लुप्त सी है। फिर भी कथा-कथन के संविधान में चमत्कृति की कमी नहीं है।

संक्षेप में कथा का विकास इस प्रकार है :

प्रथमाश्वास :— नारायणवन के यादवराजा की भक्ति की परीक्षा करने केलिए कुतूहल-वश, शिव ने एक कुट्टनाजंगम रूप को धारण कर श्रीकालहस्ति नगर आता है और एक दासी के यहाँ ठहरता है। वह दासी यादवराजा को भोजन परोसने के लिए खुद जाकर भोजन की थाली रखती है। उस दिन जब शंकर उसके घर आता है, दासी शिव की कामलीला में रत है और राजा को भोजन की थाली रखने भूल गयी है। राजा कुपित होकर दासी को बुला भेजता है।

माया जंगम का वेषवर्णन देखिए :

अडुगुनेत्लमुल नपरंगिपादालु

करमुन गेदार कंकणंबु

बंगारु प्रातवेरंगुल गोणामु

गलमुन रुद्राक्षकंठमाल

चे गकेल भसित यक्षिकतोड वेत्तंबु

तोविगट्टिन तरसेंदुयस्दु

माणिक्यरचुल चोड्डाणंबु भूतिपे

बेट्टिन कस्तूरि बिल्लबोट्टु

सार्वकालिक तांबूल चर्वणाई

रागसौभाग्यमुन चेद्मरागमणुल

दूणमुगाजूचु श्रेष्ठ दंतपंक्तियुनु गौरोगि

यंगजारांति के जोक मिडजगमगुचु। — पृष्ठ : 30

—— अर्थात् मायाजंगम सोने के खड़ाऊ पैरों में रखता है, रुद्राक्षों की कंठमाला है, एक हाथ में केदारकंकण है और दूसरे हाथ में भसित यक्षिका के साथ बैंत है, बाहु में बालशशि है, कमर में माणिक्यमणियों×के×विभूषित×लाल की कांति को छिटकनेवाली कमरबंद है, भस्म से विभूषित ललाट पर कस्तूरी का टीका है, हमेशा तांबूल के सेवन के कारण लालवर्ण होनेवाली श्रेष्ठ दंतपंक्ति पद्मराग मणियों का तिरस्कार करती है। यह है मायाजंगम की वेशभूषा।

दासी राजा के यहाँ जाती है। दासी के जाने का वर्णन देखिए :

बाडिकोतल्प योक्केल मुडिचिन कोम्मुडि

गोष्पुन गोट जुट्टुलोन्निवेल

धौऔत वेनगोनि वुन्नहारंबुलु

निद्रदेरेटि नेत्रनीरजमुलु

वाडवारिन लेगतीट चक्कनि मेनु

चिन्नि केंपुललोटि चिगुरुमोवि

पिरुदुभारंपुन वेणकेडु पदमुलु

चनुगव ब्रगुन जडिगु कौनु

गलिगि, कलगनि मनमुतो गालहास्ति

विभुनि दलचुचु, विच्चु न वेवदेंचु,

गरग नेतेंच, दूर्पुलु नीदोडिंप

राजुमुंदर निलिचे नभोजवदन। —पृष्ठ : 47

—— अर्थात्, जट से बंधे हुए केशपाश एक हाथ में है, हठात् पहनी साडी, परस्परावरूप हार, नींद से भरे हुए नेत्रकमल, लता सदृश मृदु शरीर, लालमणि जैसे छोटे ओष्ठ, नितंबों के भार से डगमगाते हुए पाँव, पीनस्तनभार से झूमती हुई कटि है, मन में कालहास्तिप्रभु का स्मरण करती हुई राजा के सामने उपस्थित होती है। वर्णन में बिंब विधान द्रष्टव्य है।

राजा दासी का शिरोमुंडन करवाता है। दासी छिन्नवदन हो शिव के पास (मायाजंगम) जाती है और अपनी दीनावस्था प्रकट करती है। जब दासी दुखित होकर शिव के पास जाती है, भक्तरक्षक शिव अपने हाथ मुंडितशिर पर फेरता है और झट शिर पर केशराशि प्रकट होते है। दासी फिर सर्वालंकारों से विभूषित

होकर यादवराजा के सेवा में जाते है। राजा जब दासी को देखता है आश्चर्य होकर दासी से उस रहस्य का पता लगाता है। दासी कुट्टनाजंगम के बारे में बताती है। राजा स्वयं जंगम के पास जाकर विनयविनमितोत्तमांग होकर उस से पूछता है कि ''स्वामी! आप कहाँ से आ गये हैं? इस दासी पर आपकी कृपा क्यों हुई? मुझे आपकी क्या सेवा करनी है?'' तब परमशिव ने कहा — ''मेरा नाम जंगम है, कालहस्ति में होनेवाली विशेष कार्यक्रमों को देखने की इच्छा से आया हूँ। यहाँ के शिवलिंग का कोई निवास न होने से मन में कुछ विषाद हुआ है। इस विषय को तुम से बताने के लिए उपायांतर से दासी के द्वारा इस कपटलीला से तुम को वश में लिया हूँ। शिव का एक मंदिर बनवाओ।'' तब यादवराजा परमशिव की आज्ञा को मानकर कालहस्तीश्वर के मंदिर का निर्माण करने की अपनी सम्मति प्रकट करता है। फिर कुट्टनाजंगम से उस कथा को सुनाने के लिए अनुरोध करता है।

तब कुट्टनाजंगमवेशधारी परमशिव कालहस्ति का माहात्म्य इस प्रकार बताता है। राजा अगर तुम को उस कथा को सुनने की इच्छा हो तो सुनो। इस ~~कालहस्ति~~ कालहस्ति का माहात्म्य पुराणरूपी समुद्रों को मथने से मिला हुई मोक्षलक्ष्मी है। ऐसे महत्त्ववाली इस स्थल के बारे में सुनो। दक्षिणदिशा में रजतगिरि एक प्राकार है, सुवर्णमुखरी नदी किले की खाई रूपी समुद्र है, राजा शिव है, उसके प्रतिहारी वटु वगैरह है, ऐसे पर्वत की महिमा अत्यंत प्रशंसनीय है जिसकी प्रशंसा करने में विष्णु, ब्रह्मा और शेषनाग भी अशक्त बन गये हैं। पद्य संख्या :— 63

कुट्टनाजंगम और एक स्यमक बाँधकर दक्षिण कैलास की महिमा का वर्णन करता है।

दक्षिणदिशा का वह गिरि मुक्तिस्त्री का शरीर है, उसका सिर भगवान शंकर है, दुर्ग पर्वत और नीलमहापर्वत स्तनद्वय है। सुवर्णमुखरी नदी नीलवेणी है, हाथ पैर इंद्रमयूरनामवाले सहस्रलिंग युक्त भ्यारद्वाजतीर्थ है। उस स्थल में पहले एक भीक-रारण्य था जिस में सिंह शरभ आदि अनेक हिंस्रपशु विचरण करते थे और जहाँ शबरी दंपति कामलीला विहार करती थीं। उस महारण्य का नाम था गजकानन।

पहले वशिष्ठमुनि ने उस अरण्य में तप किया था। विश्वामित्र के कोप के कारण वशिष्ठ अपने पुत्रशत को खोकर एक पर्वत शिखर से कूदकर प्राणों को छुड़ाना चाहता है। लेकिन पृथ्वीमाता उसे पकड़ लेती है और मृत्यु से बचाती है। पृथ्वीमाता फिर वशिष्ठ से अपने दुख को मिटाने केलिए भक्तवशंकर शंकर के लिए तप करने की सलाह देती है।

ऐसी परिस्थिति में वशिष्ठमुनि अनेक कामनाओं का निवारण अपने हृदयरूपी कमल को परमशिव को अर्पित करके ब्रह्मतेज से विराजमान होकर तप करने लगा। सद्-गुरु के पदकमलरूपी छत्रछाया में रहकर सूर्यातपसे अपने को बचाया, चंद्रशिरोमणि परमशिव के ध्यानरूपी अमृत को पीकर भूख को मिटाया, सारे शरीर पर लगे हुए भस्मलेपरूपी कवच से बिच्छू और सर्पों का भय छोड़ा, इस प्रकार अनेक उपायों से बंदी न बनकर भ्रमित संसार-मोह रूपी शृगाल को बाँध कर मारने के लिए राजयोग रूपी जाल को फैलाकर तीव्रतप करने लगे। वशिष्ठमुनि तप करते समय आस-पास का वातावरण ऐसा लगता है मानो वह तपस्वी सिंहासन पर बैठे हों। जैसे सिंहासन पर विराजमान एक राजा के लिए परिचारक गण अनेक साधनों से सेवा करते हैं उसी प्रकार तपसिंहासन पर विराजमान वशिष्ठ की सेवा कर क्रम देखिए।

वन के हाथी, अपने शुंडों से शीतल जल लाकर वशिष्ठ को स्नान कराते हैं, चमरीमृग अपनी पूँछ डुलाकर हवा करते हैं, वृक्षों से लाकर बंदर फल देते हैं और आदिवासी स्त्रियाँ उनकी सेवा करती हैं। स्थिर रूप से बैठकर तप करते हुए वशिष्ठमुनि वहाँ अरण्य के अनेक मृग पक्षियों के लिए एक आलंबन बन गया है। मत्तहाथी अपने गंडस्थल की खुजली को मुनि के शरीर से रगड़कर मिटाता है, भयंकर सर्प चंदनवृक्ष की तरह मुनि के शरीर को लपेटते हैं, तोते मैने आदि पक्षी मुनि के शिर पर अपनी कामक्रीडा करने लगे।

इस प्रकार स्थिरचित्त होकर जब मुनि तप करने लगे, एक दिन अपने यहाँ आये हुए विष्णु, ब्रह्मा, आदि देवताओं को पार्वती के मृदुमंदहास को, सामने आये हुए अपने पुत्रों को न देखकर भक्तजनों के भक्ति रूपी करग्रहण के लिए तत्पर होकर उत्सुकता से मन और दृष्टि के लिए अबाध होकर दशों दिशाओं में व्याप्त दिव्यतेज से युक्त होकर पंचभूत, पंचेंद्रिय, पंचविषय, पंचक्लेश, पंचकोशादि पंचवर्गप्राय संसार को बाँटकर भक्षण करने को उद्यत पंचमुखों से दिगंबराकार होकर परमशिव लिंग रूप धारण करके पश्चिमाभिमुख होकर मुनि के सामने प्रत्यक्ष होकर मुनि से ऐसा कहने लगे — ''मुनिचूडामणी। तुम्हारी इस तपस्या से मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारे मन में होनेवाली कामना को बताओ, उसे पूरा करूँगा।'' मुनि आँख खोलकर सामने परमशिव को देखकर हर्षातिरेक मन से युक्त होकर शिव को अँजलिबद्ध होकर इस प्रकार कहने लगे — ''हे महेश। तुम ही संसार की सृष्टि, स्थिति और लय करनेवाले हो, तुम में ही चौबीस तत्व पैदा होकर लय होते हैं, तुम ही जगत् परिपूर्ण व्यक्ति हो,

अनुभव के बिना तुम को जानना असंभव है, बहुभाषाओं में पटु होने पर भी ज्ञान के बिना तुम को जानना असमय है, ऐसे तुम्हारे आकृति को देखकर मैं कृतार्थ हूँ। काल के वश में रहनेवाले ब्रह्मपद और उच्च पदों को नहीं चाहता, तुम आदि गृहस्थ हो, तप रूपी मध्याह्न समय में जन्मरूपी भूख को मिटाने के लिए ब्रह्मविद्या रूपी अन्न को मेरे हृदयरूपी पात्र में रखो। संसाररूपी घोर रूजा के लिए मोक्षमारूपी औषधि देना और सभी युगों में मेरे पूजा स्वीकार करना — ये दोनों ही मेरे इच्छाएँ हैं, इनकी पूर्ति कीजिए।

वशिष्ठमुनि की मनोकामना की पूर्ति करने के लिए परमशिव उस लिंगाकार से दक्षिणामूर्ति रूप में प्रत्यक्ष हुआ और वशिष्ठमुनि हर्षित होकर दक्षिणामूर्ति की वंदना की। तब दक्षिणामूर्ति ने "सोचने का स्थान, प्रकाशित किए हुए संसार के कामनों से व्याप्त, भ्रांति के कारण प्राप्त जीवत्व के लिए प्रतिद्वंद्व, ब्रह्मांड तक व्याप्त, मन के विषय से दूर रहकर आनंद को पानेवाले आदि और अंत न होनेवाले ब्रह्मरहस्य" को वशिष्ठमुनि को उपदेश दिया और अंतर्हित हो गया। वशिष्ठमुनि निज प्रतिष्ठित दिव्यलिंग में अनिर्वचनीय आनंद का अबाधगति से अनुभव करने लगे। परमेश्वरी (पार्वती) भी परमशिव के विरह में असह्य बनती है। प्रमथगणों से, ब्रह्मादि देवतागण से परिवेष्ठित होकर विमान पर पार्वती वशिष्ठ प्रतिष्ठित उस दिव्यलिंग के सामने आती है। परमशिव के आज्ञा को पाकर लोकजननी पार्वती उनके बगल में ज्ञानप्रसूनांबा नाम से विख्यात होकर खड़ी है। इस प्रकार वशिष्ठमुनि की तीव्र तपस्या के कारण परमशिव पार्वती सहित कालहस्ति क्षेत्र में "ज्ञानप्रसूनांबा कालहस्तीश्वर" नाम से विख्यात हुए।

वहाँ कैलासगिरि (पर रहनेवाले) मातापिता के विरह से व्याकुल पुत्रों की तरह पार्वती परमशिव के दर्शन केलिए दक्षिणदिशा की ओर आने लगा। उसके साथ मेरु-पर्वत भी आने लगा, सूर्य और चंद्र उत्तर दिशा में निकलकर दक्षिणदिशा की ओर चलने लगे। इस अद्भुत दृश्य को संसार आश्चर्य से देखने लगा। इस प्रकार दक्षिण-कैलास नाम से कालहस्तिक्षेत्र विख्यात हुआ है। दक्षिणकैलास शिखर पर पार्वती और परमेश्वर को अत्यंत आनंद होने लगा। वे दोनों कुछ समय तक आम के पेड़ की छाया में विहार करते हैं, पर्वत की नदी में कुछ समय क्रीडा करते, आखेट के आनंद से शबरवेज धारण करके घूमते हैं, इस प्रकार वे सकल देवगण से युक्त होकर हिम-गिरि को भूलकर दक्षिण कैलास में रहने लगे।

परमशिव इस गिरि में अत्यंत आनंद पाते हैं, उस गिरि पर पार्वती सहित होकर विहार करते समय पार्वती के चरणकमल कठिन कर्कश पाषाणों से क्लेश न पाने के लिए देवता स्त्रियों द्वारा नये पत्तों को बिछवाते हैं। वे उस पर्वत पर इस कारण से विहार करते हैं मानों पर्वत की लताएँ, पत्र पुष्पगुच्छ, हिरण की दृष्टि, नये कोंपलें, सिंहों की कमर, भौंरा, बिंबफल, अनार के दाने आदि वस्तुओं को पार्वती के शरीर अवयवों की तुलना करते देखते हों।

फिर परमशिव पार्वती सहित होकर उस गिरि के आसपास इस प्रकार घूमते हैं। मुनियों के तपोवनों में तापस गृहयजमान के रूप में रहते हैं, अरण्य के बीच के पुरप्रांतों में आदिवासी गृहयजमान के रूप में, ज्ञानयज्ञ करनेवाले सिद्धों की मंडली में सिद्धों के गृहस्थ रूप में —— इस प्रकार सभी वेषों का धारण करके आत्मा

नंद को पूर्ति करते हुए परमशिव पार्वती के साथ विचरण करने लगे।

उस गिरि की महिमा अनुपम है। उस गिरि पर रहनेवाले प्राणी साधारण परिस्थिति में ही अनुपम समाधिस्थिति और मोक्ष को पाते हैं। ज्ञानमार्ग द्वारा मोक्ष को पाने के लिए तपस्साधना के लिए आवश्यक विशेष कार्यकलापों के बगैर सामान्य परिस्थिति में सामान्य कार्यकलापों से परमशिव के पद की प्राप्ति पाते हैं। जैसे — वे जटाओं को नहीं धरते, कामनाओं का नाश न करते, शरीर पर भस्म धारण न करते, भीख नहीं माँगते, हिरण की खाल को न पहनते, जंगलों में नहीं घूमते, केवल उस पर्वत की महिमा के कारण से ही बिना किसी प्रयत्न के प्राणी परमशिवत्व की प्राप्ति पाते हैं। उस पर्वत पर देवतागण, मानव, राक्षस, नाग आदि सभी प्राणी एक होकर विचरण करते हैं और अखंड मोक्षवरदायक शिवागम का प्रभाव अपने में पाकर बिना शंका के निमीलित नेत्रों से समाधि में रहता है।

इस प्रकार कुट्टनाजंगम रूपधारी परमशिव चावचराजा से कहकर अब सुवर्णमुखरी नदी की उत्पत्ति के बारे में बताने लगे।

नदी की उत्पत्ति की कथा :

कैलासगिरि पर परमशिव का परिणय हो रहा था। उस उत्सव को देखने के लिए दक्षिण दिशा के सभी चराचर भूतगण कैलासगिरि को आने लगा। उस भार से उत्तर दिशा की भूमि धँसने लगी। और दक्षिणदिशा की भूमि ऊपर की ओर उभरने लगी। उस दशा को देखकर परमशिव ने दक्षिणदिशा को धँसकर रखने के लिए अगस्त्यमुनि को आदेश दे दिया है और अगस्त्यमुनि अपनी पत्नी लोपमुद्रा के

साथ दक्षिणदिशा की ओर गये हैं। विंध्या नामक एक पर्वत का ऊपर की ओर आना ही दक्षिण दिशा का उभरने का कारण रहा है। अतः अगस्त्यमुनि उस विंध्यपर्वत पर अपना पैर रखकर नीचे दबाये थे। तभी से वह पर्वत मामूली परिस्थिति में रहने लगा। तदनंतर अगस्त्यमुनि ने गोदावरी, कृष्णवेणी नदियों में स्नान किया, श्रीशैलनाथ मल्लिकार्जुन की सेवा करके ज्योतिक्षेत्र और सिद्धवट क्षेत्रों के देवताओं की सेवा की। इस प्रकार उन उन क्षेत्रों का दर्शन करते जाकर पार्वती परमशिव पाद स्पर्श से पुनीतवाले, मणि, मंत्र और औषधियों से युक्त, संसाररूपी माया को छेदने-वाले, अगणित नदीविलास से शोभायमान दक्षिणकैलास नामवाले कालहस्ति क्षेत्र म को पत्नी सहित अगस्त्यमुनि ने देखा। पाप रूपी पाशों को काटकर, आँखों में आनंदाश्रु निकलते हुए, गद्गदकंठ से युक्त भावावेश में, पंचभूतों के संपर्क से रहित आनंदवाले चित्छक्ति रूपी नटी के नाचने का रंगमंच, ऋषिमुनियों के मन से उलझे हुए, कामदेव के प्राणों का साँपवाले, कृपा से युक्त अपांगदृष्टिवाले, मुक्तिकांता से युक्त, सर्पराज परिवेष्टित महालिंग श्रीकालहस्तीश्वर का दर्शन किया है। तदनंतर पुलक के मारे रोमांचित होकर विनम्रपूर्वक नमस्कार करके निमीलित नेत्रों से कुछ समय तक परमशिव श्री कालहस्तीश्वर का ध्यान किया है। सहस्रनामों से युक्त शिव की पूजा की, अनेक प्रकार की स्तुति की, अनेक प्रदक्षिणाएँ की, अनेक ओंकारपूर्वक पंचाक्षरीमंत्र का जप किया, कुछ समय ध्याननिष्ठा में रहा, आनंदपरवशता से पत्नी के साथ उस परमशिव की भक्तिपूर्वक स्तुति की। अनंतर पचास अक्षरों युक्तवाली, परशिवरमणी, पंचभूतों की आत्मपीठ, पंचविषयक्लेशों को नाश करनेवाली, पंचविद्यास्वरूपिणी, महामाया

प्रदायिं, सभी योगिजनों के हृदय में रहनेवाली, परमशिवामयी श्री आनप्रसन्नांबा की सेवा की, तत्पश्चात् दुर्गांबा नामक पर्वत का अधिरोहण किया, वहाँ दुर्गामाई के पाद पंकजों को नमस्कार करके आनंदातिरेक से उस मूर्ति की सेवा की।

तदनंतर अगस्त्यमुनि गणेश्वरभैरवों की सेवा करके मुनिगणों के सामने खड़ा होकर ज्योत्स्ना रहित चंद्रमा की तरह पवित्रनदी रहित उस महाक्षेत्र के शोभाविहीन स्थिति को देखकर दुखित हुए। परमशिव के लिए तपस्या करके उनकी कृपा से एक नदी को उस क्षेत्र में प्रवाहित करने के लिए वहाँ के मुनिजनों से उस कार्य की अबाध-गति से प्राप्ति पाने के लिए अनुज्ञा पाकर दक्षिणकैलाश से चार योजनाओं की दूरी पर दक्षिणदिशा के एक महापर्वतशिखर पर निर्झरों में पत्नी युक्त होकर स्नान करके दृढ पूर्वक समाधिमग्न हो तपस्या करने लगे। उस समय शुभसूचक वाणी में आकाशवाणी ने मुनि को आशीर्वाद दिये। उस अवसर पर शंकाओं को दूर कर, हर्ष से युक्त मन से, चंद्रमकुट चूडामणि, जगदेकनायक, कामदेवनाशक, महात्मायों का स्थान, उस परमशिव को हृदयकमल रूपी पीठ पर आसीन कराके सायंकाल सूर्य के समान विराज-मान देहकांति से युक्त होकर अगस्त्यमुनि तीव्रतप करने लगे। मुनि की तीव्र तपस्या के कारण क्रम क्रम से सारा संसार उत्तप्त होने लगा। तीव्रतप के कारण संसार के सभी प्राणी विविध विध शीतलोपचार करने लगे। नारीजनों ने अपने शरीर से कंचुकी को हटाया, मानव अपने दोनों हाथों में पंखा चलने लगा, मलयपर्वत पर शीतलवायु सेवन के लिए प्रजा चाहने लगी, प्राणियों की साँस गरम होने लगी, पृथ्वी पर मृग-तृष्णा दिखाई देने लगी, पथिकों को क्लेश होने लगा, दंपतियों को परस्परालिंगन

करने में विमुखता होने लगी, खूब पसीना गिरने लगा, आकाश में निर्विरत पक्षीगण, मछली आदि जलचर और पृथ्वी पर के चरनेवाले सभी प्राणी एक दूसरे की जगह में विचरण करने की इच्छा करने लगे। इस प्रकार ग्रीष्मकाल का आगमन हुआ। नदी तालाब सूखने लगे, पर्वत सूर्य की किरणों के ताप से जलने लगे, पृथ्वी तीव्र ताप के कारण तावे की तरह उत्तप्त होने लगी, उस समय की स्थिति ऐसी है कि पृथ्वी वेष्टित समुद्रजल न हो तो संसार उसी समय ही भस्म हुआ होगा।

अगस्त्यमुनि ने अपने तप की तीव्रता के कारण इंद्र पदवी को प्राप्त नहुष को सांप होने का शाप दिया, आकाश की ओर उभरते हुए विंध्य पर्वत को पृथ्वीतल के समान दबाया, बडवानल से न घटनेवाली समुद्रजलराशि का आचमन किया, दुर्मद वातापी, इल्वल नामक राक्षसों को 'अहमन्नम्' कहकर अपने में जीर्ण किया।

उस तीव्रातप में पंचाग्नि मध्य में बैठकर सूर्य की ओर देखते हुए उस सूर्यकांति के समान उष्ण और प्रकाशमान तेजयुक्त होकर सभी दिक्पालकगण अपने अधिकारों को छोडने का भय होने लगा। इस प्रकार ग्रीष्मकाल का प्रभाव होने लगा।

कुछ दिनों के बाद वर्षाऋतु आयी। आसमान पर काले बादल चारों ओर मंडराने लगे। देखने में वे ऐसे लगते हैं मानो पिछले वैरभाव का चुकाने के लिए विंध्यपर्वत अधम ऊपर की ओर बढा हो, या अपने प्रतिपक्षी अगस्त्य को जीतने समुद्र आया हो, या अपने अस्तित्व को मिटानेवाले सूर्य को नाश करने के लिए अंधकार आया हो। प्रत्येक बादल में बिजली चमकने लगी, बिजली की हर एक चमक में गर्जन होने लगे, गर्जनों की अतिशयता में वज्र गिरने लगे तथा वर्षा क्रमशः तीव्ररूप धारण

कर रही थे। प्रलयकाल में होनेवाले पुष्कलावर्तक मेघ बरसाते हों, या ऊर्ध्वलोक रूपी कटाह गर्जनों की तीव्रता से टूट कर उसके चारों ओर होनेवाला पानी स्रवित हो रहा हो, या सूर्य की किरणें जलरूप धारण करके पृथ्वी को स्पंदन परिवेष्टित कर रही हों, पृथ्वी पर देवताओं से बने हुई गंगा की नालियों की तरह वायु, आकाश, सूर्य और पृथ्वी भी जल रूप को धारणकरके बहने लगे। इस प्रकार वर्षा-ऋतु की अधिकता दिखाई दी।

इसके बाद शिशिर का आगमन हुआ। संसार के सभी प्राणी अतिशीतलता के कारण काँपने लगे, शीतल आलिंगनों से नारियाँ अपने प्रियतमों को खुश बनाने लगीं, चक्रवाक दंपती भ्रांति के वश सूर्य को चंद्रमा समझने लगी, इस प्रकार सारे संसार में शीतलता छाई गयी। ऐसे भयंकर शिशिर ऋतु में अत्यंत शीतल पानी में आकंठमग्न रहकर अगस्त्यमुनि कठोर तपस्या करने लगे। देवगण इंद्र, और ब्रह्मा और समस्त देवताओं के साथ परमशिव का दर्शन किया और उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् अगस्त्य-मुनि के तप का प्रस्ताव करके ब्रह्मा ने अपनी शंका व्यक्त की कि कहीं इंद्रपद के लिए अगस्त्य तप कर रहे हों।

परमशिव ने मुस्कुराकर कहा कि तुम को भय करने की कोई बात नहीं, अगस्त्य-मुनि, कैलास के पास कोई नदी न होने के कारण, नदी के लिए तपस्या करते हैं। यह मैं जानता हूँ और आकाशगंगा को भेजता हूँ। उसे अगस्त्यमुनि को देकर उनका दुख मिटा दो। परमशिव के आदेशानुसार ब्रह्मा ने अगस्त्यमुनि के पास जाकर वर मांगने को कहा और अगस्त्यमुनि ने संतुष्टहोकर दक्षिणकैलास के पास आकाशगंगा को बहाने का वर माँगा। ब्रह्मा ने जब आकाश की ओर देखा तो आकाशगंगा सोने की

कांति से उस गिरि के पास से होकर प्रवाहित होने लगी। ब्रह्मा तब ~~स्वर्ण~~ गंगा के सोने के रंग देखकर उसे 'सुवर्णमुखरी' नाम से पुकारने लगा। इस प्रकार आकाश-गंगा को प्रदान करके ब्रह्मा अंतर्धान हो गये और अगस्त्यमुनि संतोष तरंगायित हो गये। तब से वह पर्वत 'अगस्त्यपर्वत' नाम से विख्यात हुआ। सुवर्णमुखरी नदी अत्यंत वेग से आकाश से पाताल तक प्रवाहित होने लगी।

तब सुवर्णमुखरी नदी पाताललोक तक प्रवाहित होने लगी। उस समय सिंह के नाखूनों से फाडनेवाले हाथी के कुंभस्थल के मोती अपने गर्भ के मोतियों के समान चमकने लगे। मन्मथपीडा से पीडित मतवाले हाथियों की कामक्रीडा में टूटे हुए दांतों के समूह, कमलनाल समूह प्रवाहवेग में गिरकर तैरते हुए पुष्पित आम की शाखाओं के समूह, मेघों के आडंबर से पर्वत पर पडे हुए अशनिपात महानाद के कारण गिरे हुए पर्वतों की ध्वनि से डरकर ऊपर की ओर उडे हुए जलपक्षियों के पंखों के झुलाने से कल्पित तुषार समूह से देवताओं की कामक्रीडा से मुखों पर श्रमबिंदुओं को उत्पन्न होने से रोक कर, पहले जन्मों की कुवासनाओं से मुक्ति नहीं पाकर संसार में पुनः प्रवेश करने को बुलाने की तरह, उत्तुंग लहरों के गिरने की आर्भटध्वनि से उद्विग्न होकर, लाल-वर्णवाली पृथ्वी के योग से शोभित रूप धारण कर श्वेत भूतल से युक्त होने पर दूध की लहरों के शृंगार से, कालीमाटी के संस्पर्श से युक्त जल कृष्णवेणी जिसा के, मार्ग में अवरोधित पर्वतों को टकराकर घूम फिरकर आने से और रूप प्रवाह की प्रीति करा कर अपने में सर्वतीर्थों का अस्तित्व बताने की तरह प्रकाशित होकर, योगश्वरों के भावस्वभावों की तरह श्रेष्ठ बिंदुओं से युक्त निरंतर स्निग्ध नाद से युक्त हृदय होकर

संसाररूपी समुद्र को पार करने के कारण बननेवाले प्रकाश से युक्त, पारने अपारने योग्य विषयप्रदेश से युक्त, स्वेच्छा व्यापार प्रवर्तन से लोगों को पावन करनेवाले, वासुदेव की लीलाविलासों की तरह मीन, कमठाद्यनेक अवतार विहार योग्य होकर, शंख और चक्र से शोभित आकार से, पर्वतों को भ उखाड़ने में समर्थ होकर, पलाश-वृक्षों के समूह को निर्मूल करके अपार गौरवा का कारण होकर, विरचित नरक के कारण उत्पन्न प्रजा के दुख के लिए सन्निधात होकर, महादेव के त्रिभ्रम विहार की तरह निःशेष किये गये अर्जुन के शर समूह की तरह, कामक्रीडा जनित आनंद से युक्त आकाशगंगा के संपर्क से उत्तुंग होनेवाले पुरभंगुर के प्रवाह से युक्त, सर्व समा-श्लेषित निम्न शिवाभाग होकर, भिल्लपतियों के ग्रामों पर ऊपर से होकर जाने पर, गरीबों की हानि होने की तरह, पृथ्वी पर चलने में डरनेवाली दंपतियों का डर मिटाने के बहाने से विटपुरुषों से उठाये जाने पर अपने उरोजों को दबाए जाने पर मन कामदेव पर लगानेवाली वधुओं की तरह पर्वतों पर चढ़कर प्रियाओं से मिलजुल कर विरोद करने की तरह, रथांगों की ध्वनि से डरकर उन से विरोध करने में संलग्न हाथियों के रव द्वारा अगाह्य बनते हुए गुफाओं से निकले हुए सिंहों के गर्जा-रव को मिटाने के लिए किये हुए तरंगरूपी घोड़ों के तीव्ररव परस्पर संघर्ष होकर रोदसी कुहरों में व्याप्त होने की तरह तीव्र विडंबनाओं पर चढ़ानेवाली सेना की तरह दिखाई देते हुए, वेंकटाचल अल्कृति होकर, परशुरामेश्वर के क्रीडाक्षेत्र के लिए रंगवल्ली होकर, कालहस्तीपुर लक्ष्मीबाला के लिए मणिमाला होकर, ऊँकारपुर की भाग्यदेवी होकर परस्पर वीचियों के कारण उठनेवाले तुषार रूपी मोतियों के अक्षत समूह से वाराकरवरों को शादी करती है। अगस्त्यमुनि भी उस नदी के किनारे पर शिवलिंगों

की प्रतिष्ठा करते हुए दक्षिणकैलाश (कालहस्तिपुर) आये हैं। पत्नी सहित अगस्त्यमुनि शांताकार होकर प्रापंचिक दुखों को दूर कराते हुए परवश में लग गये हैं। कुछ समय के बाद बाह्यस्मृति पाकर परमशिव की स्तुति इस प्रकार की है —

हे महादेव। देवादिदेवा, समस्त ब्रह्मांड में अंतर्निहित रूप प्रकाश होनेवाले हे ज्योतिस्स्वरूपा, हे जगद्दीपा, समस्त ब्रह्मांडों में भरे हुए आपको महामाया के कारण जीव बनाकर पृथिव्यादि पंचभूतों के घर में, त्रिगुणों से, बुद्ध्यहंकार चित्त को, ज्ञान कर्मेंद्रियों को छः अरिवर्गों के द्वारा जन्म मरणादि अनेक क्लेशों में बाँधकर, सत् और असत् कर्मों के बंधनों में बाँधकर, आप ऐहिक और स्वर्ग सुख और दुखों से आनंद विषादों का अनुभव करते हुए, आप को हृदय में ध्यान करने से सभी कुछ शून्य होने का अनुभव न कर, अज्ञानांधकार में पड़कर दुखमयी जिंदगी बिताने पर आप कृपादृष्टि से दक्षिणकैलाश में दिव्यलिंग के रूप में प्रत्यक्ष होकर वेद और वेदांत विद्या में कंठ सूखने पर्यंत वाग्विवाद करते हुए, बुद्धि की चमत्कारपूर्ण युक्ति से वाद की प्रतिष्ठा करते हुए मैत्र शास्त्रार्थ की चिंता परिप्रीति के साथ कुछ समय तक बहुविध आराधनाओं को करते हुए, सिद्ध, नीरज, कूर्म आदि अनेक आसनों के द्वारा हठयोग में श्रांत होकर, अक आधार, जालंधर, उड्डयाण आदि अनेक बंधों में रत होकर कुंडलीशक्ति को वश में करके, षट्चक्रों में स्वेच्छारूप से संक्रमण करके, मन-रूपी घोड़ों को ब्रह्मरंध्र पर्यंत लेकर आनंदानुभूति करते हुए, पत्नी, पुत्रादि से शत्रु और मित्रों से, शीतवातादि व्यवस्थाओं के भेदों को परब्रह्म रूप में माननेवाले स्वेच्छा-चारी जो आपके रूप में परमपद को पाकर, हरि, ब्रह्म, पिपीलिका आदि सभी जंतु समूह विनोद के रूप में आप के दर्शन मात्र से उन्हें मुक्ति प्रदान करके, सत्य होकर,

नित्य होकर, ज्ञान होकर, ज्ञाता होनेवाले आपके वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ, मेरे इन अपराधों का पूर्ण कृपादृष्टि से उन्मूलन कर मेरी रक्षा कीजिए, भक्तों के लिए सुरधेनु, भक्तलीला की कल्पभुजा, भक्तजनों की चिंतामणी, भक्तों के संतोष रूपी समुद्र का चंद्रमा। भक्तों के आपदरूपी पर्वतों का कुलिश, भक्तों के समूह के दुखों को मिटानेवाला, भक्तों के कैवल्य को सिद्धि प्रदानकरनेवाला — आप को बार बार नमस्कार हैं।

इस प्रकार अगस्त्यमुनि ने परमशिव की स्तुति करते हुए ज्ञानप्रसूनांबा सहित श्रीकालहस्तीश्वर का दर्शन किया है। तत्पश्चात् वहां के तपोगण को परमशिव के लिए तप करना, परमशिव के द्वारा फलसिद्धि आदि अनेक विषयों के बारे में बताया है। तापसगण भी अगस्त्यमुनि की स्तुति की है। फिर अगस्त्यमुनि उस क्षेत्र का माहात्म्य बताते हुए दक्षिण पुण्यतीर्थों के सेवन के लिए मुनियों की अनुज्ञा पाकर वहाँ से पत्नी सहित होकर गया है।

इस प्रकार कुशलाजंगम रूपी परमशिव यादवराजा को कथा बताता है। यादवराजा फिर प्रश्न पूछता है कि परमशिव की सेवा करके उस पर्वत के जंतुओं में कोनसी फलसिद्धि प्राप्त हुई है, उसकी कथा सुनाइए।

<u>द्वितीयाश्वास</u> :—

श्रीकालहस्तीश्वर की वंदना करके कवि द्वितीयाश्वास की कथा का प्रारंभ करता है। धूर्जटि परमशिव का संबोधन करके कहता है कि सुनिये। आपकी पवित्र कथा को बताता हूँ जिसे आपने यादवराजा को सुनाया है और जो भक्तों को बहुत आनंददायक है।

ब्रह्मा को सरस्वती द्वारा संतान प्राप्ति का होना :

तदनंतर एक दिन : सर्वविद्याओं के रहस्यों के बतानेवाले मुनिगण, सकल

सुपर्वगण बंद हाथों से खडे हुए, दिक्पालकगण, ब्राह्मणगण, गरुड, गंधर्व, किन्नर, किंपुरुष आदि सभी बंदीगण सेवा करते हुए ब्रह्मा एक दिन भरी सभा में आसीन थे। उस समय सकल आभूषणों को पहन कर देवतास्त्रियाँ सेवा करते हुए सरस्वती प्राण-प्रिय ब्रह्मा के पास आ गईं। ब्रह्मा की रानी होती हुई भी अतिलोक सौंदर्य होकर भी संपूर्ण यौवना होने पर भी पति के सामने अपनी महिमाओं को प्रकट न करके अत्यंत विनम्रता से सरस्वती रही थी। पत्नी के सौंदर्य से विभ्रम होकर ब्रह्मा काम-पीडित हो गये थे। इस स्थिति को देखकर सभ्यगण विस्मित हुए और परस्पर देख कर सभ्यगण विस्मित हुए और परस्पर देखने लगे। ब्रह्मा भी सभ्यगणों के हावभावों को देखकर लज्जित हुए जिसे प्रकाशित न करके सभ्यगणों को देर होने के बहाने सभा को विसर्जित किया। अनंतर अंतःपुर में जाकर पत्नी के असाधारण सौंदर्य के कारण उस से इस प्रकार कहने लगे — ''प्रिये! तुम अतिलोक सुंदरी हो। तुम्हारे इस सौंदर्य से केवल तुम्हारे एक ही रूप से मैं कामतृप्त न हो सकूँगा, इसीलिए तुम सौ रूपों को धारण कर मेरी इस कामपीडा की तृप्ति करो।'' सरस्वती भी पति की आज्ञा मानकर सौ रूपों को धारण किया और ब्रह्मा भी उन उन रूपों से रात दिन के भेद को भी जाने बिना कई दिनों तक कामक्रीडा में तल्लीन रहे। महासौधों में, पर्वतों की तलहटियों में, आकाशगंगा के किनारों पर, निकुंजों में मधुप पुष्पसार को आस्वादन करने की तरह सरस्वती के सौ रूपों से कामांधकार में पडकर विचरने लगे। इस प्रकार की कामक्रीडा के फलस्वरूप उन सौ रूपों से तीस हजार दुष्ट राक्षस ब्रह्मा को पुत्र रूप में उत्पन्न हुए।

ब्रह्मा के पुत्रों की दुश्चेष्टाएँ :—

राक्षस स्वभाववाले वे पुत्र मदमत्त होकर दुष्ट कार्य करने लगे। पिता के पास जाकर अपनी प्रतिभा को दिखाने के लिए उनकी आज्ञा माँगने ब लगे। वे फिर अपने दुष्ट कार्यों से संसार में उपद्रव मचाने लगे। वे ललकार ने लगे कि श्रीमहालक्ष्मी को पकड़ कर लायें या कैलाश पर्वत को चूर्णकरें, तुहिनमंडल को निगलें या समुद्र जल को पियें, पन्नगकुल पति शेषनाग को नचावें या पृथ्वी को उखाड करें, आप आज्ञा दीजिए किसी भी काम को निरातंक पूरी करेंगे।

पुत्रों की दुष्ट बुद्धि और क्रूर चेष्टाओं से तंग आकर ब्रह्मा ने अत्यंत दुखित होकर उन से पिंड छुडाने के लिए विंध्याचल प्रदेश को जाने की आज्ञा दी। पिता की आज्ञा पाकर वे राक्षस पुत्र विंध्याचल जाकर अपनी दुष्ट चेष्टाओं से संसार में उपद्रव मचाने लगे। एक दुर्गम स्थल में आवास बनाकर हिंस्र पशुओं को मारकर, ऋषि पत्नियों का मानभंग कर, देवता नगरों को जलाते हुए, तप करते हुए मुनि समुदायों को बहुत सताने लगे। पुरुषों का मारना, कांताओं का मानभंग कर भोगना, पथिकों का लूट मारना, सज्जनों का सताना — इस प्रकार अनेक दुष्कृत्यों को करके चार्वाक मतावलंबियों की तरह विचरण करने लगे। कुल शैलों को दूर कर वर्णाश्रम धर्मों को दूर कर अनंत पापकर्मठ होकर स्वेच्छापूर्वक विचरने लगे। उनकी इन दुष्ट चेष्टाओं से तंग आकर पृथ्वीमाता ने नतमस्तक होकर ब्रह्मा से उनके दुष्ट पुत्रों का व्यवहार निवेदित किया और उस दुस्थिति से बचाने की प्रार्थना की। ब्रह्मा भी पृथ्वीमाता को सांत्वना देकर पुत्रों की दुष्ट चेष्टाओं से कुपित होकर उसी क्षण एक वीर पुत्र की सृष्टि करने की सोच में पड़े।

ब्रह्मा का 'उग्र' नामक पुत्र का जनन :

पृथ्वीमाता की प्रार्थना के अनुसार ब्रह्मा ने उन राक्षसों को मारने योग्य एक वीर पुत्र की सृष्टि करने की बात सोची और सोचते ही कोप के वश एक उग्रमूर्ति का जन्म हुआ जिसे देखकर सारा संसार भय से काँपने लगा। उग्र को रथ, अश्व, समूह, वज्र सदृश कवच आदि युद्धोचित वस्तुओं को देकर उन राक्षसों को वध करने के लिए आज्ञा दी। पिता की आज्ञा पाकर 'उग्र'

ब्रह्मा की आज्ञा से 'उग्र' अपने भाई राक्षसों को हत करना :—

अपने भाई राक्षसों को मारने के लिए जा निकला। उनके कोपपूर्ण हुंकार से दिग्गज भयविह्वल हुए, धनुष्टंकार की ध्वनि से सागर उथल पुथल होने लगे, रथ की तीव्रगति से धरातल काँपने लगा, रथ के वाहन सिंहों के गर्जारव से दिग्गजों के हृदय टूटने लगे। इस प्रकार उग्र राक्षसों पर टूट पड़ा। राक्षस उग्र के आक्रमण का पता लगाकर विविध शस्त्रास्त्रों से उनका सामना करने लगे। बलवान उग्र पर उन राक्षसवीर इस प्रकार आक्रमण करने लगे जैसे रघुराम के ऊपर राक्षसगणों ने आक्रमण किया। इस प्रकार दोनों के बीच घमासान लड़ाई हुई और अंत में राक्षसों का नाश हुआ। उस बीभत्स युद्ध में राक्षसों के मृतशरीर, रथवाहन अश्व आदि की असंख्य मृतदेहों की राशि गिर पड़ी। खून यत्र-तत्र प्रवाहित होने लगा। राक्षसों की मृत्यु से संसार ने सुख शांति को पाई, देवतागण संतुष्ट होने लगे, नागकुल सुख-निद्रा में मग्न रहे, और मुनिगण निर्भीक चित्त होकर अपनी अपनी तपोनिष्ठा में मग्न होने लगे। राक्षसगण की हत्या की सूचना से ब्रह्मा के तीव्र क्रोध से उग्र भी भस्म हो गया।

पुत्रहत्यादोष परिहार के लिए ब्रह्मा का तप करना :

ब्रह्मा अपने तीस हजार राक्षस पुत्र और उग्र के नाश के कारण और पुत्रहत्या पाप के कारण अत्यंत चिंतित मनस्क होकर दक्षिणकैलास गिरि के पास पुत्रहत्यादोष परिहार के लिए तप करने गया। पहले सुवर्णमुखरी नदी में स्नान कर ज्ञानप्रसूनांबा सहित श्रीकालहस्तीश्वर के दर्शन करके तप में मग्न हो गये।

तप करते समय ब्रह्मा ने मूलों को खाकर कुछ दिन बिताया, जलपान कर कुछ दिन, वायुभक्षण कर कुछ दिन, समग्र कि॰ निराहार दीक्षा के हेतु कई साल कोशिश की। ग्रीष्मकाल के प्रचंड आतप को सुवर्णमुखरी नदी तरंगों के संपर्क से चलनेवाली हवा ने शांत किया, हमेशा करनेवाले मुनियों के यज्ञ अग्नि की शिखाएँ शीतबाधा को मिटाने से, समीप वृक्षों पर रहनेवाले मयूरों के पंखों से वर्षा की रक्षा होने लगी, सर्पगण अपने विशाल फणों से उठाकर झंझावात को रोकने लगे। इस प्रकार सर्वभूतात्म-मूर्ति पुत्र के लिए तप करने में वायु, अग्नि, मयूर और सर्प ने अपनी अपनी सहायता की है। विरिंचि के तीव्र तप के कारण तपोवन प्रदेश भी द्वेष रहित बन गया है।

माता से दूर हुए हरिण शावक को धन देकर बाघ पालने लगा, नीडों से गिरने वाले शुकशिशुओं को बिल्ली पालने लगी, धूप के मारे कोयिल को लाकर आम की छाया में बंदर रक्षा करने लगे, यूथ से अलग हुए हाथी की विरह दशा को सिंह मिटाने लगे। इस प्रकार ब्रह्मा के तपोवन ने शांतरूप धारण किया। ब्रह्मा की तपस्या में सहायता करने सरस्वती भी वहाँ गयी। उनके कार्यों में सहायता आदिवासी की, बोलने में कीट दंपतियाँ करने से सरस्वती को विनोद से समय गुजरने लगे। इस प्रकार कई साल ब्रह्मा ने पुत्रार्थ तीव्र तपस्या की।

एक दिन । करुणापूर्ण दृष्टि आँखों में प्रस्फुटित हो, आनंद के मारे मन उमंग में था, प्रमथगण सेवा करते बैल (वाहन) पर चढ़कर मंगल वाद्यों की ध्वनि के साथ समक्ष सर्वदेवतागण परिवेष्ठित होते परमशिव ब्रह्मा को प्रत्यक्ष हुए।

परमशिव का साक्षात्कार कर ब्रह्मा को वर देना :—

परमशिव साक्षात्कार कर ब्रह्मा से कहने लगे कि हे सुरश्रेष्ठ। मुझे तुम्हारे लिए क्या करना है?'' ब्रह्मा हर्ष पुलकित होकर परमशिव को प्रणाम करके अनेक प्रकार स्तोत्र करने लगे।

हे देव। आप जैसे देवता, दक्षिण कैलास जैसे तीर्थस्थल, मुझ जैसे वांछितार्थ-सिद्धि संसार में अलभ्य है। आपकी महिमा अवर्णनीय है। इसलिए मौन रहना ही उचित समझता हूँ। हे परमशिव। मैं कामांध होकर कालधर्म की चिंता न कर सरस्वती से कामक्रीडा करने पर तीस हजार राक्षस पैदा हुए जो संसार को सताने लगे। उनको संहार करने के लिए उग्र को जन्म दिया है जिस ने उन राक्षसों का नाश किया था। फिर उग्र पर क्रोध आकर उसे भी मैंने मारा। इस प्रकार मैं पुत्रहत्या और पुत्रहीन — दोनों दोषों से पीडित हूँ। मुझे इन दोषों से बचाइए। ब्रह्मा की प्रार्थना से संतुष्ट होकर परमशिव कहने लगे — दक्षिणकैलास पर्वत को देखनेमात्र से ही पुत्रहत्या दोष मिट गया। (अब) माघमास में मघानक्षत्र समय में उषःकाल में इस सुवर्णमुखरी नदी में स्नान कर यहाँ के महालिंग को मौन होकर एक सौ आठ प्रदक्षिण उतने ही प्रणाम, उतने ही पंचाक्षरीजप — इस प्रकार एक साल भर यह व्रत रखना है जिस के फलस्वरूप उत्तम पुत्र संतान प्राप्ति होगी। तुम्हीं नहीं , जो

कोई इस व्रत को इस प्रकार नियमपूर्वक पालेगा, उत्तमपुत्र की संतान प्राप्ति पावेगी। यह कहकर परमशिव अंतर्धान हो गये। ब्रह्मा भी उस व्रत का नियमपूर्वक पालन करने लगे।

ब्रभु का जनन :—

व्रत की महिमा के कारण सरस्वती गर्भवती हो गई। गर्भधारण के कारण खाने में अरुचि या अनिच्छा होने लगी, गाल प्रातः कालीन चंद्रकांति की तरह (अर्थात् पांडु-वर्ण) शोभायमान हुए, कटि की वृद्धि हुई, चूचुक काली हो गई, अलसता और दीर्घ-विश्वास बढ गये। सरस्वती के शरीर श्वेत कुसुमित लता की तरह हो, पीन पयोधर फूल के स्तबक के समान हो, काली चूचुक भौंरों के समान शोभायमान होने लगी। भारती की कामनाओं के अनुकूल ब्रह्मा मघा नक्षत्रव्रत रखने पर परमशिव की करुणा से पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम (ब्रभुव' रखा गया है। सनक आदि मुनिश्रेष्ठों ने उनको ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया है।

इस प्रकार ब्रह्मा की कथा को परमशिव के बताने पर यादवराजा हर्ष-पुलकित होकर प्रणाम करके श्रीकालहस्तीश्वर नाम की प्रसिद्धि के बारे में कहने की प्रार्थना की। तब करुणामय परमशिव इस प्रकार कहने लगे। सत्ययुग में मकडी, त्रेतायुग में साँप और द्वापर में हाथि —— ये तीनों ने भक्तियुत होकर व्रत का पालन किया था और परमशिव उनकी भक्ति से मुग्ध होकर अपने में उन्हें विलीन कर लिया जिस से उनका नाम 'श्रीकालहस्तीश्वर' पड गया। राजा सावधान होकर सुनो। उनकी कथा सुनाऊँगा।

मकड़ी की मुक्ति :—

कृतयुग में (सत्ययुग) एक मकड़ी ने पूर्वजन्म संस्कार के कारण परमशिव की सेवा करने को सोचकर सुवर्णमुखरी नदी में स्नान कर अपने मुँह से विनिर्गत तंतुओं से परमशिव के लिए अनेक प्रकार के भवनों का निर्माण किया। प्रातःकाल में ओस की बूंद के पड़ने पर वे मोतियों के महल के रूप में, उन ओस कणों पर सूर्य की किरणों के पड़ने पर वे रत्नभवन के की तरह अत्यंत विचित्र प्रकार से दिखाई देने लगे। भवनों का निर्माण कर अत्यंत भक्तिपूर्वक मकड़ी परमशिव की सेवा करने लगी और उसकी भक्ति की परख के लिए परमशिव ने उन भवनों को आलय की दीपशिखा द्वारा जलवाया। भक्तिनिष्ठा में मग्न मकड़ी असह्य होकर "हाय् इतने प्रयास के साथ बनाये इन भवनों को यह दीप नाश कर रहा है। इसका अंत करूँगा।" यह कहकर उस दीपशिखा का पान करने लगा। भक्तवत्सल परमशिव उसकी भक्ति से प्रसन्नहोकर कहा कि कोई वर माँगो। मकड़ी ने विनयपूर्वक विनमित होकर ... भव-बाधारहित कैवल्य की याचना की। परमशिव ने भी उस ऊर्णनाभ को अपने में विलीन कर लिया। तदनंतर परमशिव कालासाँप और हाथी की कहानी कहने लगे।

कालासाँप और हाथी शिव का सायुज्य पाना :—

त्रेतायुग के अंत में एक साँप पाताल से मणियों को लाकर परमशिव की पूजा करते थे और द्वापरयुग में एक हाथी भी वहाँ आकर सुवर्णमुखरी नदी में ... स्नान कराकर उन से पूजा करने लगा। इस प्रकार प्रतिदिन साँप मणियों से और हाथी पत्र पुष्पों से पूजा करते थे। हाथी साँप के समर्पित मणियों को निकालकर और साँप

के समर्पित मणियों को निकालकर और साँप हाथी के समर्पित पत्रों को निकालकर दोनों अपनी अपनी पद्धतियों के अनुसार परमशिव की पूजा करने लगे। परंतु फिर भी एक दूसरे के किये हुए काम पर अत्यंत विषाद और क्रुद्ध होने लगे। इस प्रकार सोचकर एक दूसरे पर आखिर बदला लेने को तैयार हुए। इस प्रकार दोनों ही एक ही निर्णय पर आये। ~~इस प्रकार~~ उस दिन हाथी के बदला लेने को उद्यत साँप आकर बिल्वपत्र की ओट में छिपगये। हाथी वहां आकर समर्पित पुष्प और पत्र देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। तदनंतर पूजा के लिए पुष्प और पत्र लाकर पहले दिन की निर्माल्य को निकालने को सूँड को पसारा। समय के लिए निरीक्षित साँप झट सूँड के छिद्रों में घुसकर हाथी के कुंभस्थल में पहुँचा और वहाँ घूमने लगा। साँप की कल्पित बाधा से असह्य होकर हाथी इधर उधर दौडने लगा। ऊँचे स्वर में रव करने लगा, सूँड के द्वारा पानी को आकर्षित कर बाहर निकालने लगा, बडे ~~अक~~ बडे बडे वृक्षों से कुंभस्थल को रगडने लगा। लेकिन कोई प्रयोजन न देखकर आखिर साँप को मार कर स्वयं मरने को तैयार हुआ।

इस प्रकार निर्णय कर भगवान को आखरी प्रणाम करके, साँप को बाहर न आने के उपाय से सूँड को फिराकर, शिर को अवनत करके दक्षिणकैलास पर्वत से झट टकराया। इस से अंदर का साँप मर गया और हाथी भी मर गया। चूँकि दक्षिण-कैलास पर्वत ~~से कह~~ मरणस्थान होने के कारण, साँप और हाथी रुद्रगण के आकार को पाये और वहाँ के महालिंग से पार्वती सहित परमशिव प्रत्यक्ष होकर उन दोनों से वर मांगने को कहा। तब वे दोनों साष्टांग होकर नमस्कार करके इस प्रकार परमशिव की स्तुति की —— "हे परमशिव, दक्षिणकैलासपती, आपकी जय हो।

देया। आपका वर्णन करने में ब्रह्मा और विष्णु असमर्थ हैं, सकल निगमागम असमर्थ हैं, कुछ लोग अद्वैतबुद्धि से 'सोऽहम' कहकर आपकी भावना करते हैं (यहाँ शंकर का अद्वैत मत सूचित है), कुछ लोग 'दासोऽहम' कहकर आपकी सेवा करते हैं (यहाँ रामानुज का विशिष्टाद्वैतमत सूचित है), कुछ लोग आपको मंत्र का रहस्य समझकर आपका नाम जपते हैं, कुछ लोग हठयोग के द्वारा कुंडलिनि में वायु धारण करते हैं (यहाँ हठयोग सूचित है)। इस प्रकार करने पर भी मरने पर आपके चिद्रूप को नहीं पाते हैं। जो आपकी सेवा करता है वह निःशंक रूप से कृतकृत्य बनता है। आपकी शरण में जानेवाला अन्य की शरण में नहीं जाते और नीचों की सेवा करते। आपको निधरूप में पानेवाले व्यक्ति और प्रकार की संपत्ति को नहीं चाहता, आपकी गति चाहनेवाला अन्यों के सामने नहीं जाता, आपके चरणकमल की प्राप्ति के बिना जन्म मरण रूपी बबबू छूटती नहीं, आपकी महिमा को वर्णन करने में हम कुछ भी निर्णय कर सकते नहीं। हम पर कृपा कर हमारी रक्षा कीजिए। आपको बार बार नमस्कार।

इस संसार रूपी समुद्र में पड़कर हम तैर करके करके, शरीर पर मोह नहीं छोड़ सकते, अनेक जन्मों को धारण कर, मरणबाधाएँ सहकर हम तंग आ गये। हम को मिथ्या सौख्यों की चिंता नहीं। नित्यसुख प्रदान करके हमारी रक्षा कीजिए।"

उनकी भक्ति से मुग्ध होकर उन दोनों को अपने में मिलाकर उनको मुक्ति प्रदान कर दी।

इस प्रकार श्री (मकड़ी), काल (साँप), हस्ति (हाथी) — इन तीनों को अपने में मिलाने के कारण परमशिव का 'श्रीकालहस्तीश्वर' नाम पड़ा।

यह सुनकर यादवराजा हर्ष होकर फिर से प्रश्न किया है कि और कौन है जिसने परमशिव की सेवा करके मुक्ति को पाई है।

तृतीयाश्वास की कथा :—

तब कुट्टनाजंगमरूपी परमशिव यादवराजा को इस प्रकार सुनाता है :

कन्नप्पा नामक तिन्नना की जन्मभूमि का संक्षिप्त वर्णन :—

पोत्तपिनाटि में कुडुमरु नामक एक पुर रहता है जो आदिवासियों का निवास स्थान है। आदिवासियों का जीवन विधान अत्यंत विचित्र प्रकार से वर्णित किया गया है। वहाँ की स्त्रियाँ वराह के दाँतों से उत्पन्न मोतियों को बदरीफल के समान समझती हैं, मछलियों से उत्पन्न मोतियों को कुरुविंद मूलों के समान समझती हैं। अर्थात् उनकी दृष्टि में मोती कोई विशिष्ट वस्तु नहीं, श्रीचंदन, अगुरु आदि पेड़ों का अपने पचनाग्नि के लिए उपयोग करती हैं। जवादि, पुनुगु, कस्तूरी सभी को मिलाकर अपने घर में सौम्यकार्य के रूप में उपयोग करती हैं। वे पीतांबरों को धारण करने में समर्थ होने पर भी 'पारुटाकुलु' (पत्ते) धरती हैं। षट्रसयुक्त भोजन करने में समर्थ होकर भी वन धान्यों को ही खाते हैं। इस प्रकार कृत्रिम पूर्ण संपदों को भोगने योग्य होने पर भी वे स्वाभाविक जीवन बिताने में संतुष्ट रहते हैं। खेतों की रक्षा के लिए वे स्त्रियाँ एक विचित्र प्रकार की कठपुतली का निर्माण करती हैं। अगुरु काष्ठ से मानवाकृति बनाकर कस्तूरी से उस मूर्ति का रंग बनाकर, चामरों से केशपाश, हाथी के मोती आँख बनाकर उस मूर्ति को खेतों में फसल की रक्षा के लिए रखती हैं।

फसल की रक्षा करनेवाली स्त्रियों का व्यवहार अत्यंत मनोहर है। अटारी पर

जडेहोनेवाले स्त्रियाँ अपनी कटि तक बंधी हुए पत्तों के चलन से उनके मानावचन दिखाई पडते हैं। बाहुमूलों की कांति छोटे उरोजों पर पडती वे स्त्रियाँ चिडियों को भगाती हैं।

अपनी स्त्रियों की शोभा के साम्य में आदिवासी पुरुष अपने घरों में, सिंह, मोर, हिरण, और हाथी के बच्चे का पालन करते हैं। अर्थात् स्त्रियों की कदर के लिए सिंह, केशपाश का मोर की पूँछ से, आँखों का साम्य हिरन की आँखों से और स्तनों का साम्य हाथी के कुंभस्थल से (हाथी के बच्चों से) करते हैं। उस पुर में आदिवासी राजा नायनाथ रहता है।

<u>तिन्नना का जनन</u> :—

नायनाथ की पत्नी 'तंदे' गर्भवती होती है और नव मासों के अनंतर एक बच्चे को जन्म देती है जिसका नाम है तिन्नना। जन्म अवसर के बारे में कवि इस प्रकार कहता है कि तिन्नना जन्म होते ही मुस्कराता है मानो शिवभक्ति के शून्य के कारण संसार भ्रष्ट हो गया हो। मोहबंधों को काटने की तरह अपने छोटे-छोटे पैरों को हिलाने लगे, भवपराङ्मुख होने की तरह शय्या पर करवट बदलने लगे, श्रेयोमहाराज्यरूपी सिंहासन पर बैठने की तरह बैठने लगे, परमपिता के तत्व को खोजने की तरह क्र म क्रमरहित कदम उठाने लगे।

इस प्रकार प्रतिदिन प्रवर्धमान होनेवाले बालक के गुण और शिवभक्ति के लक्षण विलक्षणरूप से व्यक्त होने पर माता तंदे और पिता नायनाथ अत्यंत प्रसन्न हुए और उसके सीधे व्यवहार के कारण उसको 'तिन्नना' नामकरण किया है। कालक्रम लेक के अनुसार तिन्नना अनेक प्रकार के खेल खेलने लगा और कुछ दिनों के बाद वह नवयुवक बन गया।

तिन्नना का धनुर्विद्याभ्यास :—

युवक होने के बाद तिन्नना धनुर्विद्या सीखने लगा और कुछ ही दिनों में अनेक प्रकार के धनुषों को चलाने में पारंगत हो गया है।

उस समय नवयौवनावस्था में तिन्नना को आखेट की विविध क्रियाओं को सिखाने के लिए आदिवासी अपने राजा को विज्ञापन करने पर नायनाथ अत्यंत संतुष्ट होकर आखेट शिक्षा के पहले पुत्र को कोदेनि देवता का दर्शन करवाना चाहता है और उसकी व्यवस्था करवाता है। कादेनि देवता के दर्शन करवाने के लिए तिन्नना के साथ विविध अलंकरणों से सज्जित आदिवासी स्त्रियाँ, बहुविध भक्ष्यान्न, बलि देने के लिए अनेक विध जंतुओं को लेकर विविध विध वाद्यों के साथ गये हैं। तिन्नना के साथ नायनाथ और सबै भी उचित प्रकार सजधज कर वहाँ गये हैं।

कादेनि पूजा के लिए तिन्नना स्नान कर विभूति धारण करता है, बाहुओं में मूलिका लताओं की कडी पहनता है और हाथ में धनुर्बाण लेकर देवता के सामने उपस्थित होता है। देवी की पूजा के बाद माता और पिता को वंदना कर मृगया विनोद कुछ समय तक करता है। उस अवसर पर सभी पुरवासियों को मिष्टान्न और मधुपान से परितृप्त करता है।

मधु मधुपान रसास्वाद से मदमत्त होकर पियक्कड चित्र विचित्र प्रकार की चेष्टाएँ करने लगे हैं। कोई बोलने को उद्यत होता है, चलने को सोचकर लडखडाने वाला और एक है। चुपचाप रहने को उद्य होकर असमर्थ बननेवाला और एक, उठने में असमर्थ एक, बेकार घूमनेवाला एक, निष्कारण गालियाँ देनेवाला एक, गानकला में अनभिज्ञ गानेवाला और एक, सामने आनेवालों को अभिवादन करनेवाला एक है, लज्जाहीन

होकर व्यवहार करनेवाला और एक है। खूब पीकर भी और कुछ पीने को चाहनेवाला और एक है — इस प्रकार सभी पियक्कड कार्ट्टन की यात्रा में विचरण करने लगे हैं। विट पुरुष पर अनुरक्त स्त्री खूब पिलाकर निजपति के नाम से पुकारती हुई कामक्रीडा में मग्न होने लगी है। कुछ लोग परस्पर निंदारोपण करके झगडा करने लगे है। आखिर खूब पीने के कारण उनके लालवाले नेत्रों के बीच में काली पुतली इस प्रकार दिखाई देने लगी है जिस प्रकार मैकिन पुष्प (एक प्रकार का लालवर्ण पुष्प) के बीच में भ्रमर में चमकने लगा।

तिन्नना का परिजनों के साथ आखेट को जाना :—

दूसरे दिन नागनाथ ने तिन्नना को कई परिजनों के साथ आखेट करने को भेजा है। आखेट के कई प्रकार के परिकर और कई जंतुओं को लेकर वे सब एक घने जंगल में पहुँच गये हैं। कानन में अनेक प्रकार के वन्य मृगों को मारकर अपने गाँव आते हैं। इस प्रकार कुछ समय बीत गया है।

परमशिव तिन्नना को अपने वश करना :—

एक दिन तिन्नना अनेक पशुओं को मारके क्लांत होकर एक पेड के नीचे सोने लगा है। सपने में परमशिव ने तिन्नना को दर्शन देकर समीप के शिवलिंग का अस्तित्व बताकर उनकी सेवा करने को आदेश देकर अंतर्हित हुए हैं। तिन्नना भी झट जाग्रत होकर परमशिव के संकेत स्थल को ढूँढने लगा है। इतने में एक वराह पाशों में न जकडकर दौडने लगा है। तिन्नना उसका पीछा करके जाने लगा है। कुछ समय तक वह दौडते दौडते परमशिव के संकेत स्थल के पास जाकर अदृश्य हुआ है। तिन्नना वहाँ एक शिवलिंग को देखकर भक्ति परवशता में डूब गया है। कुछ समय तक निष्क्रिय

होने के बाद होश में आया है और उसके अनेक प्रकार की सेवा करने लगा है।

<u>शिवलिंग की सेवा</u> :—

अत्यंत तन्मयता में रहने के बाद में तिन्नना सचेत होकर उस निर्जनारण्य में पड़े रहनेवाले शिवलिंग की स्थिति पर दुखित होकर उसके साथ अपने गाँव आने की प्रार्थना करता है। उस शिवलिंग को आहार के रूप में अनेक प्रकार के आखेट मृगों को और तरह तरह के फल और मधु आदि को देने का वादा भी करता है। निर्जनारण्य में रहना खतरा समझकर अपने गाँव के सुख भोगों को पाने का आग्रह भी करता है। अनेक खोजनों की सेवा-सहायता दिलाने का वादा भी करता है। इस प्रकार बहुत समय तक प्रार्थना करने पर भी जब परमशिव जवाब देता नहीं तिन्नना वहाँ ठहरने को कृतनिश्चय होता है।

कुछ समय के बाद ढूंढनेवाले तिन्नना के परिजन वहाँ आकर तिन्नना की विचित्र प्रकृति देखकर बहुत दुखित हुए हैं और घर वापिस जाने की प्रार्थना करते हैं। लेकिन तिन्नना उनकी बातों का जवाब न देकर तन्मयता में रहने लगे हैं। आखिर वह सचेत होकर परमशिव की सेवा करने का अपना निश्चय बताकर उन्हें घर वापिस भेजता है। तदुपरांत वह उस लिंग की स्थिति पर दुखित होकर उसको आहार देने को उद्यत हुआ है। समीप के अरण्य में एक वराह को मारकर उसे भूनकर पत्तों के दोनों में माँस लाया है, परमशिव के स्नान केलिए गंडूष में सुवर्णमुखरी नदी का पानी भरकर वहाँ आया है। (इस प्रसंग में जगद्गुरु आदिशंकर की शिवानंदलहरी का एक श्लोक द्रष्टव्य है)।

'मार्गावर्तित पादुका पशुपते रंगस्य कूर्चायते।

गंडूषाबु निषेचनं पुररिपोर्दिव्याभिषेचायते।

किंचिद् भक्षित मांसशेष कबलं नव्योपहारायते।

भक्तिः किं न करोत्यहो वनचरो भक्तावतंसायते॥'

— शिवानंदलहरी, श्लोकसंख्या 63

तिन्नना उस गंडूषाबुओं से शिवलिंग का स्नान कराके दोने में रखनेवाले मांस को खाने को परमशिव की प्रार्थना करता है। लेकिन परमशिव चुप रहता है। इस पर तिन्नना पूछता है कि ''हे पार्वतीश्वर! क्या यह मांस अच्छी तरह भूना हुआ नहीं, या और भी भूनना है, या इस में रुचि नहीं या यह तुम को काफि नहीं, बताइए। क्या तुम को भूख नहीं लगती? क्या और कोई कारण है? या मैंने क्या कुछ अपराध किया? अगर तुम इसे नहीं खाओगे तो मैं आपके चरण कमलों पर पडकर प्राणों को छोडूंगा।'' इस प्रकार तिन्नना प्रार्थना करते करते रो पडता है। तब उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर परमशिव उसको सात्वना देता है और उस मांस को खाता है। इस प्रकार तिन्नना परमशिव की सेवा करते करते कई दिन बीत जाते हैं।

तिन्ना के इस प्रकार की सेवा के कारण मंदिर में मांस खाने के पत्तल दिखाई देते हैं। मंदिर के पुजारी शिवब्राह्मण मांस संबंधित पत्तल देखकर बहुत दुखित होता है और परमशिव से उस रहस्य को प्रकट करने की प्रार्थना करता है। परमशिव उसकी शक्ति से संतुष्ट होकर तिन्नना की भक्ति को उसे दिखाना चाहता है। शिवब्राह्मण लिंग की ओट में रहकर तिन्नना की सेवा को देखता है। रोज की तरह तिन्ना मांस को के दोने और गंडूषों में जल लाकर परमशिव का अभिषेक कर मांस खिलाना चाहता है।

लेकिन परमशिव चुप होता है। कुछ समय बाद परमशिव की आँख से रक्त बहने लगता है। तिन्नना कई प्रकार की चिकित्साएँ करने पर भी वह स्राव बंद न होता। तब अपनी आँख निकालकर परमशिव की आँख की जगह रखता है, तब वह ठीक होती है। तिन्नना हर्ष पुलकित होकर देखता रहता है कि दूसरी आँख से फिर रक्त बहने लगता है। तब तिन्नना अत्यंत भक्ति के साथ अपनी दूसरी आँख को भी निकालने को उद्यत होता है कि परमशिव अत्यंत संतुष्ट होकर उसको रोकता है। इस प्रकार तिन्ना को आँख निकालने से रोककर परमशिव ने तिन्नना को दर्शन दिया है और शिव-ब्राह्मण से तिन्नना की भक्ति के बारे में पूछता है। तब परमशिव उन दोनों महा-भक्तों को पास बुलाकर वर माँगने को कहता है। वे दोनों पुनरावृत्ति रहित शाश्वतानंद का वर मांगते हैं और परमशिव उनकी भक्ति से संतुष्ट होकर उन्हें अपने में विलीन करता है। इस प्रकार तिन्नना और शिवब्राह्मण को मुक्ति मिली है।

नत्कीर की कथा :

चतुष्षष्टि कलाविलसित 'वालवाधि' चोक्कनरेश मधुरापुर का राजा था। उनकी पत्नी मीनाक्षी थी। उस पुर के पुष्करिणी में शंखफलक विराजमान था। इस प्रकार समस्त वैभवों से युक्त होकर मधुरापुर अत्यंत प्रसिद्ध हुआ। उस पुर में नत्कीर नामक एक कविश्रेष्ठ रहता था जो अन्य कवियों के साथ शंखफलक पर रहता है।

शंखफलक का जन्मक्रम :—

श्रीकालहस्तीमाहात्म्य प्रबंध में शंखफलक की जन्म कथा अत्यंत मनोरम है। मलयपर्वत पर रहते समय अगस्त्यमुनि ने द्रविडभाषा की सृष्टि करने के लिए उस भाषा के शब्द, कोश, अलंकार और लक्षण आदि विषयों की सृष्टि करने को सोचकर

'अष्टादशाक्षर' मंत्र को एक फलक पर लिखकर पांड्यनरेश को देकर कहा कि द्रविड़-भाषा के समग्र पंडितों को इस फलक पर स्थान मिलता है और एक के लिए स्थल खाली रहता है। इसकी सेवा कर तुम्हारा वंश धन्य बनेगा। उस वंश के अनेक राजाओं ने उस फलक की सेवा करते रहते थे। आखिर कलियुग में उस वंश में एक राजा का जन्म हुआ जो राज्यपालन में अत्यंत समर्थ होकर कुलगिरि, दिग्गज, शेषनाग, आदि-वराह और आदिकमठ आदि की प्रसिद्धि को पाया।

द्रविडभाषा सरस्वती के लिए वह फलक ने कंठहार के समान होकर अत्यंत प्रसिद्धि पाई। अमृततुल्य वाक्चतुरता से युक्त होकर शैवविज्ञान के सरोवर के समान होनेवाले नक्कीर जैसे बारह कविश्रेष्ठों को उस पीठ पर स्थान देकर वह पांड्यराजा उनका भरण पोषण करने लगे। जो कोई अपनी कविता से उन कविपंडितों को संतुष्ट कराता था। राजा का आदर पात्र बनकर इष्ट फलसिद्धि पाता था। इस प्रकार मधुरापुर कवि पंडितों से विराजमान होकर अपनी कीर्ति को चारों ओर फैलाती थी।

अकाल वर्णन :—

एक समय मधुरापुर में ग्रहों की वक्रगति के कारण अकाल हुआ था। वर्षा का अभाव हुआ। पृथ्वी पर अशांति फैल गई, सभी जनता के हृदय में निराशा और भय विलयताण्डव करने लगा। प्रजा धान के अभाव के कारण लता पत्तों को खाकर गुजर करने लगी। ऐसी परिस्थिति में उस पुर के मंदिर का पुजारी हरिद्विज अकाल से बचने के लिए कहीं जाने को सोचता था। लेकिन परमशिव ने कृपापूर्ण होकर उस पुर के राजा का प्रशंसापूर्ण एक पद्य लिखकर पुजारी को देकर कहा है कि राजा को इसे

दिखाने से मुँह माँगा धन मिलेगा। हरिद्वज जाकर चमत्कारपूर्ण उस पद्य को राजा की सभा में पढता था। लेकिन कविमंडली के नत्कीर उस पद्य के अनौचित्य पर सवाल करता था। हरिद्वज लज्जित होकर परमशिव को उसे लौटाता था। फिर परमशिव सभा में जाकर विषय के समर्थन में उस पद्य की सत्यता पर डटा रहता था, लेकिन कविताभिमानी नत्कीर पद्य की अनौचित्यता पर दृढ बन कर परमशिव से होड करता था। नत्कीर की मूर्खता पर कुपित होकर परमशिव उसे कोढे बनने का शाप देता था। विषय की यथार्थता को जानने पर पश्चात्ताप होकर नत्कीर को उस भयंकर शाप की मुक्ति का उपाय बताने के लिए परमशिव से याचना करता था। तब परमशिव कृपा-पूर्ण होकर कैलासपर्वत का दर्शन करने से उस व्याधि से मुक्ति पाने का उपाय बताता था। कैलासपर्वत की यात्रा में शंकित विघ्नबाधाओं की याद से भयकंपित होता था। लेकिन परमशिव का आदेश अनिवार्य होने के कारण किसी तरह कैलासपर्वत के दर्शन को उद्द्य होता था। वह स्वगत में कहता है कि मैं ने शंखपीठ पर अन्य कवियों की तरह न रहकर परमशिव से क्यों हठ कर बाग्विवाद किया है। इस घोर कोढे रोग से कैसे गुजर कर सकूंगा। यहाँ से कैलासगिरि तक मार्ग में कितने ही दुर्गम पर्वत, अरण्य, हिंस्र पशु, नदियाँ आदि रहेंगे। इन सब को पारकर मैं कैलासपर्वत को किस प्रकार देख सकता हूँ। इस प्रकार दुःखित होकर नत्कीर कैलासगिरि की ओर ❋ रवाना होता है। रास्ते में अनेक पुण्यक्षेत्रों का दर्शन करके काशीक्षेत्र पहुँचता है। गंगा में स्नान करके विश्वेश्वर, अन्नपूर्ण और ढुंढिविनायक आदि सभी देवी देवताओं का दर्शन करके कैलासगिरि केलिए पुनः प्रस्थान होता है। रास्ते में एक विचित्र प्रकार का सर देखता है।

66 ''हंससंसदभीष्ट विहार हेतु

वे बद्धक हृदयमे यप्रतर्क्य

मगुवु, नद्वैत, पंकजाकरंबु

पोलिचे, ब्रह्मंबु तेरगुन पूर्णमगुवु।'' — कालहस्तिमाहात्म्यः पृष्ठः 195

यह सर परब्रह्म की तरह दिखाई देता है। क्यों कि यह हंसों के समूह का (परमहंस संन्यासियों का) स्वच्छंदतापूर्वक विचरण करने का स्थान है, जलसमुद्रय होकर (बहूदक नामक यतियों से पूर्ण होकर) मनोरम है, अचिंत्य होकर, अतुलनीय होकर (दूसरी वस्तु न होनेवाले), विराजमान है। चंचल तरंगों से, कमलपुष्पों से और उन पुष्पों की सुगंध से युक्त होकर वह सर अत्यंत मनोहर दिखाई देता है। कमलपत्रों में चक्रवाकों के कोलाहल से, राजहंसों के समूह से, मधुपों की गूंज से, स्वच्छ जलयुक्त, श्र श्वेतकमलों से युक्त वह सर अत्यंत मनोहर लगता है। उस सर के तट पर एक बट वृक्ष रहता है जो अत्यंत विशाल होकर अपनी शीतल छाया से पथिकों को और समस्त पशु-पक्षियों को आश्रय देकर गया क्षेत्र के महाबट की तरह दिखाई देता है। नत्कीर अत्यंत संतुष्टांत मानस होकर उस बट की छाया में बैठकर वहाँ की विशेषताओं से बहुत विस्मित हुआ है। बट से गिरे हुए पत्ते बाहर एक पड़कर पक्षी बनते हैं और उड़ जाते हैं। सर के जल में पड़कर मछली बनती हैं, एक पत्ता गिरकर आधे जल में और आधीभूमि पर होकर पड़ा। जल के भाग मीन और पृथ्वी के भाग पक्षी होकर और दोनों भाग परस्पर खींचते हैं। इस घटना को परवशता में देखते समय एक विकृताकारवाले भूत आकर नत्कीर को पकड़कर अपनी गुफा में दाखिल देता है और बिल का द्वार पत्थर से बंद कर देता है। अनंतर भूत स्नानार्थ सर को चलने के बाद तब तक रखे गये निन्यानबे मानव अत्यंत निराश होकर नत्कीर से कहने लगे हैं कि आज उनकी आयु की पूर्ति हुई, क्योंकि सौ की संख्या की पूर्ति होने पर भूत उन

सब का एक ही साथ भक्षण करेगा। तब नक्कीर मन को धीरज बांधकर अपना इष्टदेव सुब्रह्मण्य की स्तुति करने लगता है। सुब्रह्मण्यस्वामी तुरंत प्रकट होकर भूत को मार डालता है और सब का बंधन छुड़ा देते हैं। अनंतर सुब्रह्मण्यस्वामी नक्कीर के आगमन का कारण पूछे हैं और नक्कीर अत्यंत विनयपूर्वक अपनी शाप गाथासुनाता है। सुब्रह्मण्यस्वामी परमशिव के शाप का रहस्य समझकर उनसे उस सरोवर में स्नान करने की सलाह देता है। नक्कीर भी उस सर में स्नान कर सिर उठाने पर सामने दक्षिणकैलासगिरि और सुवर्णमुखरी नदी दिखाई देती है। यही नहीं, उसका रोग भी मिट जाता है। तब अत्यंत निष्ठावान् होकर नक्कीर एक सौ पद्यों में परमशिव की स्तुति करता है। उस स्तोत्र से संतुष्ट होकर ज्ञानप्रसूनांबा सहित कालहस्तीश्वर साक्षात्कार होकर नक्कीर से वर मांगने को कहते हैं। नक्कीर ने अंजलिबद्ध होकर भवदुख का निवारण करने की प्रार्थना की है। परमशिव संतुष्ट होकर नक्कीर को मुक्ति प्रदान कर अंतर्हित हुआ है।

इस प्रकार कुट्टनाजंगम ने यादवराजा को नक्कीर की कथा सुनायी है।

चतुर्थाश्वास :—

तदनंतर कुट्टनाजंगम यादवराजा से इस प्रकार कहने लगे —

मधुरापुरवर्णन :—

दक्षिणदेश में मधुरापुर नामक एक पुर है। उस नगर के राजा अत्यंत पराक्रमशाली हैं, ऊँचे ऊँचे भवनों से, अनेक पुष्पवाटिकाओं से और सकल संपदाओं से समृद्ध होकर जनता अत्यंत शांतिमय जीवन बिताती है। उस पुर में मीनाक्षी सहित

चोक्कनाथ रहता है।

उस नगर में माणिक्यवल्ली नामक एक वेश्या रहती है। वह अत्यंत रूपवती और गुणवती भी है। एक समय वह भगवान की कृपा से गर्भधारण कर दो कन्याओं को जन्म देती है। वे पुत्रिकाएँ अत्यंत सुंदर हैं। पुत्रिकाओं को पालती हुई माणिक्य-वल्ली अत्यंत आनंद होती हैं। पालने में सोते समय वे पुत्रिकाएँ लटकती हुई मणियों के हारों को इस प्रकार निर्निमेष देखती हैं मानो योगसाधना में अनुरक्त हो। माणिक्यवल्ली अपने कुल धर्म के अनुसार उन पुत्रिकाओं को कोक्कोकशास्त्र के विलास को लोरी के रूप में गाती है। बढ़ती कन्याओं को वेश्याधर्म सिखाने के लिए अपने घर की दीवारों पर रती-मन्मथ-रंभा-कुबेर, राधा-कृष्ण आदि अनेक दंपतियों के चित्र लिखवाती है। इस प्रकार माणिक्यवल्ली अपनी पुत्रिकाओं को वेश्याधर्म सिखाने के कई प्रयत्न करती है। लेकिन वे बालिकाएँ बचपन से ही अपने पूर्वजन्म सुकृत के वश परम-शिव में संलग्न हैं। कालांतर में वे सयानी होती हैं और माता के दुर्बोध को ठुकराती हैं। कालहस्तीश्वर की महिमा को सुनकर वे दोनों श्रीकालहस्तिक्षेत्र जाने को तैयार भी हैं। माता इनकी विरक्ति पर अत्यंत दुखित होकर उनको उस प्रयत्न से विरत करने लगती है। लेकिन माता के सभी यत्न निष्फल बनते हैं। वेश्या पुत्रिकाएँ कालहस्ति जाने को दृढ मनस्की बनती हैं।

परमशिव मार्ग में वेश्यापुत्रिकाओं की रक्षा करना :—

वेश्यापुत्रिकाएँ दृढचित्त होकर श्रीकालहस्ति क्षेत्र को जाने के लिए साथियों का अन्वेषण करती हैं। उनके इस रहस्य प्रयत्न को जाते हुए, उस वेश्या गृह के बरामदे

में सोनेवाले कुट्टनासन्यासी (कुट्टना सन्यासी वेषधारण करनेवाले चोर) उन्हें रहस्य-पूर्वक श्रीकालहस्ति पहुँचाने का वादा करते हैं। वेश्यापुत्रिकाएँ संतुष्ट होकर जंगमांगना का उचित वेषधारण कर रात में घर से निकलती हैं।

आधीरात में निकलकर वे सूर्योदय तक कुंभकोण क्षेत्र पहुँचती हैं और वहाँ से चिदंबर क्षेत्र जाकर चिदंबरेश्वर की सेवा करती हैं। वहाँ के समुद्र में स्नान करके पुनीत बनती हैं।

इस प्रकार वे श्रीकालहस्तिक्षेत्र जाते समय रास्ते में चोर उन कन्याकाओं का धन और कनकवस्तुओं को हराने के लिए समय का निरीक्षण करते हैं। जिस जगह वे चुराने का यत्न करते हैं, वहाँ परमशिव राजा और सेना के रूप में या आदिवासी राजा और उनके भटसमूह, वैश्यनायक और व्यापारिजनसमूह या शिष्यसहित सन्यासी, गोपगणसहित पशुपालक —— इस प्रकार किसी किसी रूप में उन वेश्यपुत्रिकाओं के समीप आकर चोरों के प्रयत्न को विफल करने लगते हैं। किसी मंजिल में जंगम रूप धारण कर श्रीकालहस्तीश्वर उनको आत्मविद्या सिखाने के बहाने से चोरों के यत्न को व्यर्थ करते हैं। इस प्रकार सफल मनोरथ होकर वे पुत्रिकाएँ रास्ते में 'वालिप्रतिष्ठित शिवलिंग' का दर्शन करती हैं।

<u>वालि से पूजित शिवलिंग की कथा</u> :——

एक समय उस स्थल पर एक सर था जिसके तट पर वालि ने एक शिवलिंग (सज्जलिंग) की प्रतिष्ठा करके भक्तिपूर्वक उसकी पूजा की है। पूजा के अंत में उस लिंग को अपने साथ ले जाने को वालि उसे उठाता था। लेकिन वह लिंग नहीं विचलित हुआ। क्योंकि परमशिव का उस स्थल में रहने को जी चाहता था। जब वह लिंग विचलित

नहीं होता है अपने दोनों हाथों से उसे उठाना चाहता था। पर विफल होता था। तदनंतर अपनी पूंछ को लिंग के चारों ओर फिराकर उठाता था। जब वह नहीं चलता था वालि ने चिंताक्रांत होकर बहुविध से परमशिव की प्रार्थना की। तब परम-शिव ने कृपालु होकर वालि से कहता है कि हेवालि! मैं तुम से बिछुए नहीं। हमेशा मेरी कृपा तुम पर है। इस सर के तट पर रहने को मेरा जी चाहता है। यथा प्रकार मेरी सेवा करते रहो।'' वालि ने सोचा कि चूंकि तट पर परमशिव की इच्छा होती है, उसे मिट्टी से भराने से लिंग अपने हाथ आने की संभावना करके एक पहाड को उस तट में ढकेलता था जिसके वेग से पानी चारों ओर बिखेरता था और एक नदी के रूप में दक्षिणकैलास के पास होकर बहता था। इस जल की महिमा विचित्र प्रकार की है। तीर्थ में स्नान करने से भवदुख मिटता है, पर्वत की महिमा से अष्टसिद्धियाँ मिलती हैं। आखेटक इस पर्वत पर घूमते वक्त उनके लौह साधन सोना बन जाते हैं, मारे गये जंतु कुछ ही समय में पुनरुज्जीवित होते हैं, अस्वस्थ लोग वन बूटियों को खाने से कायसिद्धि होती है। वालि उस सत्लिंग को छोडकर नहीं जा सकता है और उस दिन उपवास कर दुखित हृदय से शाम को गया। यह है इस क्षेत्र की महिमा जिसकी ब्रह्मा, शेषनाग आदि प्रशंसा नहीं कर सकते।

इस प्रकार वहां के पुरवासियों ने उन वेश्यापुत्रिकाओं को उस परमशिव की सेवा की सेवा करने को सलाह दी। उन्होंने भी उस रात्रि को वहीं ठहर कर परमशिव की सेवा की हैं।

उस रात को वेश्यापुत्रिकाएँ वालि पूजित शिवलिंग की सेवा करके दूसरे दिन प्रातःकाल कालहस्ति के लिए निकली थी। कुछ कुट्टना सन्यासी भी उनके साथ चलते

थे। रास्ते में एक घने जंगल में एक सर के तट पर परमशिव के लिंग की अर्चना सविवेकनिष्ठा में करते समय चोर उन कन्यकाओं को मारकर धन को लूटने की सोच में थे। तब छोटी बहिन उन चोरों के यत्नों का पता लगाकर बडी बहिन से बता दिया। बडी बहिन ने निर्भीक होकर परमशिव का ध्यान किया। इतने में परमशिव एक द्राविलजंगम का वेषधारण ~~किया~~ करके शिष्यसहित वहाँ आये और चोर उन्हें देख कर भीतचित्त हुए और विफल मनोरथ होकर अपना रास्ता पकड लिया।

तदनंतर द्राविलजंगमवेषधारी परमशिव ने उन कन्यकाओं को कालहस्तिक्षेत्र पहुँचाया। श्री कालहस्तिक्षेत्र पहुँचकर संतुष्ट हृदय से सुवर्णमुखरी नदी में स्नान करके परमशिव के मंदिर गयीं। ज्ञानप्रसूनांबा सहित श्रीकालहस्तीश्वर को देखकर वे तन्मयता में परमशिव की प्रार्थना करते करते बेहोश पडी थीं। अकस्मात् एक दिव्य तेजः पुंज उनके सामने प्रकटित हुआ। कन्यकाएँ अपने मनोरथ के सफल होने से संतृप्त होकर साष्टांग प्रणाम करके, विनयपूर्वक परमशिव के सामने खडे हो गयी। परमशिव भी उन वेश्यापुत्रिकाओं की इच्छा जानकर अपने में उन्होंने विलीन कर लिया। इस प्रकार वेश्यापुत्रिकाएँ परमशिव की सायुज्यमुक्ति प्राप्त की थीं।

इस कथा को सुनते ही यादवराजा ने परमशिव से फिर प्रश्न किया है कि मकडी, साँप, हाथी और तिम्मना —— ये कौन हैं जिन्होंने परमशिव की कृपा से मुक्ति ~~हासिल~~ प्राप्त की, इनकी पूर्वजन्म की कथा सुनाइये। तब परमशिव मुस्कराकर यादवराजा को उनकी पूर्वजन्म की कथा इस प्रकार कहने लगे ——

मकडी की पूर्वजन्म कथा :——

जब ब्रह्मा अपनी इच्छा के अनुसार सृष्टि करते थे, विश्वकर्मा के पुत्र ऊर्णनाभ

भी प्रतिसृष्टि करने लगे। ब्रह्मा ने कुपित होकर उसे 'ऊर्णनाभ' नामवाले कीट बन जाने का शाप दिया। ऊर्णनाभ ने अत्यंत भयविह्वल होकर ब्रह्मा से अपने अपराधों को क्षमा करने की प्रार्थना की और शाप की मुक्ति का उपाय बताने की प्रार्थना की। तब ब्रह्मा ने कृपापूर्ण होकर ऊर्णनाभ से भु गजारण्य के बिल्व पत्रों में छिपने की सलाह दी ताकि पत्रों से परमशिव की पूजा होने के कारण मुक्ति मिलेगी। ऊर्णनाभ भी ब्रह्मा की सलाह के अनुसार गजारण्य में रहने लगे और जब हाथी उन बिल्व पत्रों को लेकर परमशिव के ऊपर चढने से उसकी मुक्ति हुई।

साँप की पूर्वजन्म कथा :—

एक समय कैलास पर्वत पर परमशिव के दर्शन के लिए सकल सुर, मुनिगण, आये हैं। परमशिव अपने अलंकरण में लगे हुए थे। बालचर्म का वस्त्र धारण किया, शरीर पर भस्म लगाया, अर्ध चंद्र को जटाओं में बाँध दिया, ब्रह्मा के कपालों का हार कंठ में डाला, शेषनाग को जनेऊ के रूप में धारण कर कैतिक सर्प को पाँव की कड़ी बना दी। इस प्रकार सभी साँपों को अपने आभूषण बनाते समय काल नामक साँप प्रियाविरह में पाताल गया। परमशिव ने यह पता लगाकर उसको कैलासपर आने को मना कर पाताल में ही रहने का शाप दिया। काल ने दुखित होकर अपनी भूल पर पश्चात्ताप व्यक्त किया और परमशिव से उस शाप की मुक्ति के लिए प्रार्थना की। परमशिव कृपापूर्ण होकर भूमंडल पर दक्षिण कैलास नामक कालहस्ति क्षेत्र में नवरत्नों से मेरी पूजा करो ताकि तुम को शाप की मुक्ति मिलेगी और मुझे पाओगे। कालासाँप परमशिव के आज्ञानुसार दक्षिणकैलास पर्वत पर नवरत्न मणियों से परमशिव की पूजा करने लगे। तदनंतर द्वापरयुग के प्रारंभ में।

हाथी की पूर्वजन्म-कथा :—

एक दिन जब परमशिव पार्वती समेत होकर एकांत में तब 'हस्ति' नामक एक प्रथम महांध्य होकर पहरेदारों को नगण्य कर अंतःपुर में गया था। पार्वती हाथी होनेका शाप दिया। हस्ति ने भयविह्वल होकर तर तर काँपते हुए शाप की मुक्ति के लिए प्रार्थनाएं की। पार्वती करुणाप्लावित स्वन में त्रेतांत में गजारण्य में काल नामक एक साँप परमशिव की पूजा करेगा। उस साँप से परमशिव की पूजा के विषय में होड होगी ताकि तुम दोनों मरेंगे और फिर तुम को मुक्ति मिलेगी। हस्ति भी परमशिव की पूजा बिंबपत्री से करता था। जब काल फणि मणियों से। दोनों में पूजा विषयक होड होकर दोनों मरते थे और मुक्ति पाई।

तिन्नना की पूर्वजन्म कथा :—

भारतयुद्ध के संदर्भ में शत्रुसंहार के लिए पाशुपतअस्त्र को पाने के लिए अर्जुन इंद्रकील पर्वत पर तप करने लगे। उसकी निष्ठापूर्वक तप की परीक्षा करने के लिए परमशिव कौतुक होकर स्वयं शबरजाति नायक वेषधारण कर पार्वती को शबरी के रूप में, प्रमथगण आटविक जन, चारों वेद चार कुत्ते, मूकासुर को सूकर बनाकर परमशिव उन तपोवन-प्रांतों में आये थे। तदनंतर उस सुअर पर परमशिव एक बाण चलाता था और अर्जुन भी अपना एक बाण छोडता था। मरे हुए सुअर के लिए दोनों वाग्विवाद करने लगे। वाग्विवाद दारुण युद्ध के रूप में परिणत हुआ और दोनों अपने बल पराक्रम से एक से एक अपनी शक्ति दिखाने लगे। कुछ समय के बाद अर्जुन के अक्षततूणीर में एक भी बाण न होने के कारण अर्जुन विचलित हुआ था और धीरज

न होकर अपने धनु से परमशिव को मारता था। तदनंतर दोनों बाहाबाही, मुष्टि-युद्ध करते थे। अर्जुन के पराक्रम को देखकर परमशिव अत्यंत प्रसन्न होता था और वृषभारूढ होकर निजरूप में अर्जुन के सामने साक्षात्कार किया। अर्जुन भी अत्यंत विनयपूर्वक परमशिव को साष्टांग प्रणाम करता था। परमशिव ने संतुष्ट होकर अर्जुन से वर माँगने को कहा था। तब अर्जुन अपनी भूल की क्षमा करने को कहकर पाशुपत अस्त्र दान करने की प्रार्थना की। मुक्ति को भी देने की प्रार्थना की। तब परमशिव संतुष्ट होकर पाशुपत अस्त्र दिया और कहते थे कि चूंकि तुम बंधुजनों को मारने की इच्छा रखते हो। इसलिए तुम को इस जन्म में मुक्ति नहीं मिलेगी और दूसरे जन्म में आदिवासी जन्म को पाकर जंगल में घूमते घूमते एक शिवलिंग को देखकर सकल संदेहों को छोड़कर उसकी सेवा करोगे जिस से तुम को मुक्ति मिलेगी। उसी कारण अर्जुन ने इस जन्म में तिन्नना होकर मुक्ति पाया।

इस प्रकार कुट्टनाजंगम रूप परमशिव ने यादवराजा को उन सब का वृत्तांत बताया और अंतर्हित हुए। यादवराजा भी संतुष्ट होकर तुरंत निकलकर सुवर्णमुखरी नदी में स्नान करके कालहस्तीश्वर के मंदिर बनवाने में संलग्न हुए।

3 · 2 · 9 : धूर्जटि की लोकज्ञता और शास्त्रज्ञता :—

सामान्यतः जन व्यवहार में तथापि विद्वांसिकों की अपेक्षा साधारण जनता में जो सूक्तियाँ सुनने में आती हैं, वे ही लोकोक्तियाँ हैं। काव्य में इनका बड़ा महत्व-पूर्ण स्थान है। ये काव्य के लिए शोभा के हेतु हैं। इन में सत्य निहित और चमत्कार भासित होता है जो उस जाति की संस्कृति और आचार का, भाषा की विशिष्टता को

हमारी आँखों के सामने अभिव्यक्ति करती हैं। संदर्भों के x अनुसार इनका प्रयोग करके कवि अपने काव्य सौंदर्य को बढ़ाता है। ऐसी कई लोकोक्तियों को धूर्जटि ने अपनी काव्य रचना में प्रयोग किया है। कुछ उदाहरणों को देखिये :—

इदि पेक्केडुलु पट्टेन्

सदनंबुलु गट्ट नाकु शंभुनिकोरकुन्

द्रुदि गुम्मरि कोक्येडुनु,

गुदि कोक पेट्टन्नमाटकु न्सरिवच्चेन्।''— कालहस्तिमहात्म्यम्, पद्य: 100

इस पद्य में प्रयुक्त लोकोक्ति यह है 'तुदि कुम्मरि कोक एडुनु, गुदि कोक पेट्टु'। इसका अर्थ यह है कि कुम्हार के सालभर में बनाये बरतन लाठी की एक ही मार में नष्ट किये गये हैं। मकडी अपने तंतुओं से परमशिव केलिए अनेक भवनों का निर्माण कई सालों तक करती है। भगवान् उसकी भक्ति की परख में सभी तंतु भवनों को जलाता है। यह देखकर मकडी खिन्न होती है और इस प्रकार सोचती है कि जिस प्रकार कुम्हार के सालभर बने हुए बरतन एक ही मार में ध्वस्त किये जाते हैं उसी प्रकार कई सालों तक की गई मेरी मेहनत भी एकदम नष्ट-भ्रष्ट हो गयी है। प्रस्तुत लोकोक्ति का प्रयोग अत्यंत संदर्भोचित है।

नत्कीर परमशिव से शप्त होकर कोढा बनता है और उसकी मुक्ति के लिए शिव के आदेशानुसार कैलासमार्ग जाता है। मार्ग में अपनी असमर्थता को सोचकर दुखित होते समय सुब्रह्मण्यस्वामी प्रत्यक्ष होकर अपनी महिमा से एक तटाक (तालाब) की सृष्टि करके नत्कीर को उसमें स्नान करने को कहता है। सुब्रह्मण्यम फिर कहता है कि इस स्नान में कैलास शिखर दर्शन का फल मिलता है। इस संदर्भ में यह लोकोक्ति कही गयी है।

तन महत्वम्मु डाचि नत्तम्मिकोलनि

मडिमवले नुंड, ना कविर्मंडलैंडु

नाडु मिंचुन गैलास माडबोवु

तीर्थमिदुरेन रीति सिद्दिंचु' ननुडु। । — कालहस्तिमाहात्म्यम्ः पद्यः 2।4

भाव यह है कि जो किसी क्षेत्र में स्नान करने जाता है उसी के सामने वही क्षेत्र दिखाई पडता है। प्रस्तुत संदर्भ में दक्षिण कैलास शिखर दर्शन का फल उस कल्पित तटाक स्नान मात्र से ही मिल गया है। संदर्भोचित प्रयोग है।

और एक लोकोक्ति है। :—

""विड्डु विचारमु, नीविक

नडचि जीरिपंग गलुगु 'टीलिगि परपुपै

बडिन गतियय्ये जनु' मन,

इट्यक ना विश्वकर्मतनयुडु प्रीतिन्।"" पद्य : ।।6

विश्वकर्मा के पुत्र ऊर्णनाभ पिता की सृष्टि की प्रतिसृष्टि करने लगता है। विश्वकर्मा कुपित होकर ऊर्णनाभ नाम के कीटक का जन्म होकर गजारण्य में रहने को शाप देता है। तब पुत्र पिता से शापमुक्ति की युक्ति भी पूछता है। तब विश्वकर्मा कहता है कि बेटा! तुझे इस जन्म की अपेक्षा यही श्रेष्ठ है, क्योंकि परमशिव की अर्चना से तुझे परमपद मिलेगा जो भवबंधनों का उन्मूलन करता है। इस संदर्भ में यह लोकोक्ति कही गयी है। इसका अर्थ यह है कि क्रोध के मारे जो जाता है, वह शय्या पर गिर जाता है। अर्थात् अनिष्टता से सुख की प्राप्ति होती है। शप्त ऊर्णनाभ केलिए यह शाप ही वर बनकर मोक्ष का मार्ग दिखाता है।

इनके अतिरिक्त कई एक लोकोक्तियाँ इस प्रबंध में हैं। जैसे :—

1) हस्तिमशकांतरमु, पद्य : 22 2) मंदुनकुं नेन गानमु, पद्यः 32 3) चेत-डियादनु, पद्य : 54

इस प्रकार लेकज्ञाता की अपेक्षा अपनी शास्त्रज्ञता को भी धूर्जटि ने व्यक्त किया है। संपूर्णग्रंथ में धूर्जटि के योगशास्त्रज्ञान, अद्वैतविद्यानुभूति, वैद्य शास्त्रज्ञान, ज्योतिषशास्त्रज्ञान, और कामशास्त्रपरिज्ञान भी देखने को मिलते हैं।

इन सभी शास्त्रज्ञान का विवरण नीचे दिया जाता है :

<u>योगशास्त्रज्ञान</u> :— धूर्जटि योगशास्त्र के पूर्णज्ञाता है। पहले कवि श्रीविद्योपासक थे, इसलिए काव्य के प्रारंभ में मंगलाचरण पद्य में 'श्रीविद्यानिधिये' नाम परब्रह्म की स्तुति की है। बाद में महादेशिक सारवभौम के द्वारा योगाभ्यास साधना करके मोक्षलक्ष्मी साधक बन गया है। इस उक्ति की पुष्टि काव्य के अनेक पद्यों से होती है। जैसे :— 1) वागर्थंबुलु श्रीनुकललु , पद्य : 7 2) अनुभव गोचरु — चूलैशु नमिवर्णितुन, पद्यः 9 3) भी यखंडाद्वैतज्ञान मयाकृति, बहुमाधानेपुणि देलियुनदि यशक्यमट। शिवा।, पद्य , 80 4) अंतामिथ्यतलंचिचूड, पद्यः 3 5) समनेत्रद्युति दामे चूडसुखमे, पद्य : 107

<u>अद्वैत विद्यानुभूति</u> :—

धूर्जटि अद्वैतविद्यानुभूति में भी कुशल हैं। अपनी अद्वैतभावना के अनुसार हरि हर अभेदभाव को व्यंग्यरूप में (अर्थांतर रूप से) व्यक्त किया है :

सकलापूर्णुडु नीलवर्णु डनुटलु सत्यंबुगा वेल्पु पो

लिक वेजीकोटि निंड दारकलु बोल्चे, निर्जराधीश्वरा

विकु लपिंचिन पुब्बुल, डलमवु डद्देवुंडु मेदवु गा

मिकि देल्लवुग, नप्पुडेल्पुग परन् मिचिन् शशांकागतिन्। — पद्य: 132

इस पद्य में 'अंधकार में तारों का उद्भव' के द्वारा अंधकार 'हरि' का प्रतीक और तारों के द्वारा 'हर' का प्रतीक बताकर हरि हराभेदभाव का निरूपण करता है। इतना ही नहीं हर को अपने तारक मंत्रोपदेशक के रूप में स्वीकार करता है। जैसे :—

पापक्लेशागुणेषर्णोबियतनुप्रत्यर्थितापोर्मिका

कोशादिव्यालिरिक्तमूर्ति। त्रिजगत्कूलंकषाकार। मा

याश्रृंगारवतीविलासविभवव्यापिव्यमुख्यांतये

लासर्मांबड। तारकाक्षरमहालापोपदेशप्रदा।। पद्य : 162

वैद्यशास्त्रज्ञान :— धूर्जटि वैद्यशास्त्र के भी परिज्ञाता हैं। शिव के नेत्र-चिकित्सा तिम्मना के द्वारा करवाते समय अनेक चिकित्सा क्रियाओं को व्यक्त करता है :

कोकपोद्दलंबांबगोन नूवि योत्तुचु, गक्कोलककरभभागमुन गाचि,

मेल्लि लंगिडाकु मेत्ति, रेचकि निम्म पंटि नीरून नूरि पट्टवेट्टि,

तेल्लविंटेन पुब्बु रेचिव तड्डसमिडि, कलिमेपुब्बुलु गोरि नलविपिंडिचि,

पेरिन भेपिवेट्टि, परगु वत्तुलु वेंचि, चनुबाललो रायि, संकु चमिरि,

चिम्मगंधुलु, तासरि कम्मगंडु, लडिगि लोचिन पुंडुलु, नडचिगंडु,

लेम्मि चेसिन मानक, चिंदुमौलि कन्नु लोडिबडि नेत्तुरु गारुट्युनु।"

पद्य संख्या : 110

इस पद्य में नेत्र संबंधी कई प्रकार की चिकित्साएँ सूचित हैं।

इस प्रकार वैद्यशास्त्रज्ञान का परिचय धूर्जटि ने किया है।

ज्योतिषशास्त्रज्ञान :— धूर्जटि ज्योतिषशास्त्र के ज्ञाता भी हैं। मथुरापुर में जब दुर्भिक्ष होता है उस समय की वे देश-स्थिति और दुर्भिक्ष का कारण बताते हैं। ग्रहों का वक्रगमन इसका मुख्य कारण माना गया है। जैसे :

चनुदेंचे शनि मीनमुनकु दूर्पुन धूम केतुवु दोचे, जीमूत डंब
रंबेचे, मध्यदिनबंबुल रेपाडि चिनिके दुषारंबु दिनदिनंबु,
रात्रुलु मिन्नु निर्मलभावमुनु बोंदे, वेलियेंड गासे, गर्वलदोरगे,
वर्षगर्भमु नडक पोये, विदियल गुमुखाप्तुदारणकोम्मु दरिगे,
कन्य विदिपदर्थ्ये, मखाप्रवेश कालमुन यंदु नुरुम, दर्खेड गर्ज
लेसकगे जमुवेस दोलकरि, नैमि सेप्पु। नेल्लजनमुल मनमुलु तल्लडिल्ल।"

— पद्य : 149

इसका अर्थ इस यह है कि 'जब शनिग्रह ने मीनराशि में प्रवेश किया, पूर्व-दिशा में धूमकेतु का उदय हुआ, मेघों का आडंबरमात्र हुआ, मध्यदिनों में तुषारमात्र वर्षा हुई, रातों में आसमान निर्मल हुआ, तीआतप हुआ, प्रचंडवायु होने लगी, दूज का चांद में धारण अग्रभाग घटने लगा, कन्याराशि में वर्षा न हुई, मघा नक्षत्र के प्रवेश समय में भ मेघों का गर्जन भी न हुआ, दक्षिणदिशा में भयंकर गर्जन होने लगा — इस प्रकार वर्षाऋतु की स्थिति है' उक्त वर्णन के द्वारा कवि का ज्योतिष शास्त्र ज्ञान का परिचय मिलता है।

कामशास्त्रज्ञान :— सकलशास्त्र पारंगत होने के कारण योग, तत्वशास्त्रों के अलावा कामशास्त्र में भी कवि को विशेष परिज्ञान है। वेश्यापुत्रिकाओं के संबंध में कवि ने कामशास्त्र संबंधित कई एक विषयों को व्यक्त किया है। जैसे :—

कोकिलवाणि पाडु वन कुंरीमिबिडडल दोद्लवेद्ट्ट, को
क्कोक कलाविलासमुलकुंगल यर्थमु जोलपाटगा,
ना कमनीय शैशवमुनप्पटिनुंडियु वारधर्मीव
द्याव्युसलत्व मातमजल कब्बुपडन्वते नेंबु निब्बलुन्। — पद्य । 13

इस में कवि माणिक्यवल्लि के द्वारा कोक्कोकशास्त्र को लोरियों के रूप में गवाता है। ता कि वेश्यापुत्रियों की आदत होती है।

रतिवधूमदनुलु, रंभाकुबेरपुत्रकु लुर्वशीपुरूरवुलु, मेन
का कौशिकुलु, गोपिका मुकुंदुलु, धान्य मालिनी रावणुलु, मत्स्यलोच
नर्श्यशृंगुलु, दमानलिनेक्षणा पराशरुलु, तारा निशाकरुलु, गौत
मांगना देवेंद्रु, लमरवेश्याजयंतुलु, द्रौपदी पांडवुलु, पृथाब्ज
हितुलु, नडचिन गतुलात्ममुतल वेंचु निंटिगोडल व्रासिंचु निंदुवदन,
वनितलकु सरसत कलिम वाविवरूप लेमियुनु लेमिवारल वेल्कपरुप।। —पद्य। 14

उक्त पद्य के द्वारा कवि वेश्यामाता के द्वारा दंपतियों के और कई विट दंपतियों के चित्र दीवारों पर लिखवाता है। इस से वेश्यामाता का आशय यह है कि उन चित्रों को देखकर बालिकाएं वेश्याधर्म का ज्ञान प्राप्त करें। वेश्याधर्म का उत्तम उदाहरण कवि के इस पद्य में व्यक्त है ।

जिड्डुनालुक, जलमु राजीवदलम, नडुसु नुम्मरपुरुगु देहंबु, प्रब्ब
कायमृक्किक बूडिद बोरयनि करणि, विटुल गलिसियु गलियकुंडगवलयु ललन।''

— पद्य । 28

— तैल स्पृशित जीभ की तरह, कमलदल पर पडे जल के समान, कीचड में रहनेवाली

: की तरह, लताकरंज पूल के संपर्क न रहने की तरह वेश्यास्त्री को विटों [illegible]
से व्यवहार करना चाहिए।

इस प्रकार के अनेक विषयों का परिज्ञान कवि को है। आदिवासी स्त्रियों का अलंकार विधान — ये सब सूक्ष्म परिशीलन के परिचायक हैं।

कादंबिनि की पूजा से संबंधित यत्नों का व नैवेद्यवस्तुओं का विवरण, शिव की आँख की चिकित्सा संबंधित विवरण, आदिवासी बालिकाओं की बाल्यचेष्टाएँ, खेलकूद आदि का विवरण कवि की सूक्ष्मपरिशीलनाशक्ति को व्यक्त करता है।

धूर्जटि की आध्यात्मिकता :—

धूर्जटि कृत श्रीकालहस्तिमाहात्म्यम् और श्रीकालहस्तीश्वरशतकम दोनों आरंभ से अंत तक अध्यात्मभाव से ओतप्रोत हैं। हर एक घटना में आध्यात्मिकता झलकती है। इसका कारण यह है कि धूर्जटि की आध्यात्मिकता कवि को [illegible] वेश्यालोलुपता का तेनालि रामकृष्ण कवि ने जो कलंक [illegible] लगाया है, वह केवल उसकी हास्यप्रवृत्तिमात्र है। वास्तव में धूर्जटि ऐहिक भोगों से कई कोसों दूर रहा है। इस बात का ज्वलंत उदाहरण प्रबंध और शतक में कई जगह क्या, प्रत्येक पद्य और प्रत्येक वाक्य भी है। कवि की वैराग्यपूर्ण कृति के [illegible] बारे में पंडितों में मतभेद है। एक का अनुमान यह है कि क्योंकि कविता भक्ति, ज्ञान, वैराग्यपूर्ण होकर कई राजाओं की निंदा उ में होने के कारण कृष्णराय का धूर्जटि की कविता की प्रशंसा करने पर भी वैष्णव-मताभिमानी होने से अन्यकवियों की भांति [illegible] शैवकवि धूर्जटि का सम्मान नहीं करते जिस से विमुख होकर कवि ने कृष्णराय को दृष्टि में रखकर ऐसी

कविता लिखी होगी। लेकिन यह ठीक नहीं, यह भ्रमपूर्ण धारणा है। कवि ने सहज ही आध्यात्मिकता से प्रभावित होकर भक्ति, ज्ञान, वैराग्यपूर्ण अपनी रचनाएँ की है। साधारणतया ऐहिक भोगों से विमुख कोई भी व्यक्ति दूसरों की परवाह नहीं करता, उनके दूषण भूषण मानापमान से प्रभावित नहीं होता। इसी कारण धूर्जटि ने भी अपनी कृतियों को नरांकित न करके अपने इष्टदेवर श्री कालहस्तीश्वर को ही समर्पित किया है। अतः कवि की आध्यात्मिकता के बारे में कुछ लिखना अनिवार्य है।

कवि अपने को श्रीकालहस्तीश्वर के दरबारी कवि प्रकट करता है। शतक के इस पद्य में कवि कहता है :

नीनामंबोडबाटुमाटविनुमा नोचेत विलंबु मे
गानिबट्टक संततंबु मदि वेड्कन्गोल्तु नंतस्तप
ज्ञानीकंबुन कोप्पगिंपुकुमु नन्नायोटियेचालु दे
वीनोत्तं गरिनोत्त नोत्त सिस्तन् श्रीकालहस्तीश्वरा।। — का· श ·पद्य· ४

—— अर्थात् हे कालहस्तीश्वरा। मेरी एक बात सुनो। मैं तुम्हारी एक कौडी भी माहवारी के रुप में नहीं लूँगा, हमेशा खुशी के साथ आपकी सेवा करुँगी, मुझे अरिषड्-वर्गों को मत सौंप दो, वही काफी है। मुझे रथ और धनसंपत्ति की आशा नहीं।

और एक पद्य में कवि प्रतिज्ञा करता है :

मोकुंगानि कवित्व मेव्वरिकि ने नीमंबु मीदेत्तितिन्
चेकोटिन् विरसंबुलम्मनु मुजेमट्टितिन्, बट्टितिन्
लोकुल् मेच्चरंबु, नाललुकुमेलुन् मेर्पुलुगाबु छि
छि कासंबुलरीति दप्पेदु नुमी श्रीकालहस्तीश्वरा।। का · श · पद्य।।४

—— अर्थात्, हे कालहस्तीश्वरा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, मैं अपनी कविता को किसी को दूँगा नहीं (समर्पित करूँगा नहीं)। हाथ में विल्वकंकण बाँध लिया है। व्रत का धारण किया है जिस की प्रशंसा सारे संसार ने मुक्तकंठ से की है। काल की गति में त्रुटि होने पर भी मैं अपनी प्रतिज्ञा निभाऊँगा।"

ऊपर के उद्धरणों से यह समझना अनुचित है कि कवि अहंकारपूर्ण थे। अपनी विनम्रता के द्वारा भगवान् की प्रार्थना करता है —— यही एक विचित्र प्रकार की प्रार्थना। श्री कालहस्तीश्वर की अर्चना पद्धति भी अनोखी है। शतक के एक पद्य में कवि भगवान की अपनी विशेष प्रकार की अर्चना पद्धति इस प्रकार प्रकट करता है ——

जलकंबुल् रसमुल् प्रसूनमुलु वाचाबंधमुल् वाद्यमु
लकलशाब्दध्वनु लंचितांबर मलंकारंबु दीप्तुल्मेरु
गुलु नैवेद्यमुमाधुरीमहिमगा गोल्तुनिनुन् भक्तिरं
जिलदिव्यार्चन गूर्चि नेर्चिनक्रियन् श्री कालहस्तीश्वरा।। का · श · पद्य· 50

—— भाव यह है कि हे कालहस्तीश्वरा। मैं आपकी दिव्यार्चना इस प्रकार करूँगा। (कविता को) रस ही आपका अभिषेक जल है, पदबंध ही पूजा के लिए पुष्प हैं, शब्दों की अव्यक्तध्वनि ही पूजा के मंगलवाद्य है, अलंकारों का समूह आपको पहने का पटंबर हैं, कविता की दीप्ति आपकेलिए दीपदर्शन है, माधुर्यपूर्ण कविता ही आपका नैवेद्य है। इस प्रकार भक्ति के साथ आपकी सेवा करूँगा।"

कितना अच्छा वर्णन है। कवि की भगवान् के प्रति अनन्यता, एकाग्रता और तन्मयता कितनी गहरी है। कवि की इस तरह की भावसंवेदना आत्मानुभूति सूचक है।

तन्मयावस्था में भक्त भाव से अपनी भूल को जानता है, भगवान का निजस्वरूप अ अग्राह्य है, अवर्णनीय है। ऐसी दिव्यमूर्ति की अर्चना वाचा और कर्मणा करना असंभव है, क्योंकि परमात्मा वाचामगोचर है, रूपरहित है, निर्गुण है, निराकार है। कवि अपनी भूल को जानकर छडी मार खाने की तरह सविनय होकर भगवान् की अर्चना में अपनी असमर्थता इस तरह व्यक्त करता है :

श्लीलस्तुतिर्यिंपबध्दु नुपमोत्प्रेक्षाध्वनिर्व्यंग्यश

ब्दालंकार विशेषभावल कलम्यंबिन नीरूपमु

जालु जालु गावित्वमुन्नितुबु नेसर्त्यंबुवर्णिंचुचो

श्रि। लग्निंपरभाक माइशकबुल् श्रीकालहस्तीश्वरा।। — का॰ श॰ पद्य॰ 5।

—— अर्थात्, 'हे कालहस्तीश्वरा। सत्य की पुष्टि के लिए कवित्व असमर्थ होता है, ठहर सकता नहीं। हे भगवान् आपकी स्तुति िस रूप से करूँगा। क्योंकि आपका रूप उपमा, उत्प्रेक्षा, ध्वनि, व्यंग्य, शब्दालंकारादि सभी विशेषों के लिए अलभ्य है। ऐसी अनुपम दिव्यमूर्ति की स्तुति करने को मुझ जैसे कविगण साहस करते हैं जो हास्यास्पद प्रयत्नमात्र है।''

इस तरह भगवान् निजस्वरूप चित्रण में अपनी असमर्थता को स्वीकार करता है साथ ही साथ भगवान् के प्रति कविता की रचना करना अपनी जिह्वा की नैसर्गिक प्रकृति-मात्र है, यह भी स्वीकार करता है।

दैनिकजीवन विधान के बारे में कवि का मत है कि सुवर्णमुखरी नदी के तट पर हुए आम के वन के बीच की वेदिका पर स्थिरभाव से बैठकर भगवान् का ध्यान करना ही अत्यंत आनंददायक है, इस से बढकर और कोई आनंद नहीं है। इस से

कवि की लौकिक (ऐहिक) बाधाओं के प्रति विरक्ति और आध्यात्मिकासक्ति व्यक्त होती हैं।

प्रबंध की रचना आध्यात्मिक भावपूर्ण पद्य से ही प्रारंभ हुई है। इस पद्य को देखिए :

श्री विद्यानिधियै, महामहिमचे जेन्ने, वसिष्ठाज लू
ता वातायान सामजाटीक गोत्रादेव नत्कीर रा
जै वाकीयुग यादवाविपुलकुन् श्रेयस्करंबैन या
र्यावामांगमु, दिव्यलिंगमु मदीयाभीष्टमु लप्पेडुन्। —— का · मा · पद्य। ।

—— भाव यह है कि श्रीविद्या के लिए निधि है। महामहिमोपेत है, वशिष्ट, ब्रह्मा, मकडी, साँप, हाथी, आदिवासीभक्त तिन्नना, शिवब्राह्मण, नत्कीर, वेश्यापुत्रिकाएँ और यादवराजा —— इन सब को श्रेय देनेवाले दिव्यलिंग जो पार्वती सहित है, मेरी अभिलाषाओं की पूर्ति करें।

इनका कालहस्तिपुर वर्णन अन्य प्रबंधकवियों की तरह न होकर एक विलक्षण-रूप से ही आध्यात्मिकभाव को प्रकट करता है। ''संसाररूपी पारद को भगानेवाली आग है, कलुष समूह का भेदक है, कामलताओं के लिए कुठार है, शंकाज शंकारूपी सांप केलिए नकुल है, मदे मनरूपी बैल के नाक के लिए रस्सी है, गुरु का उपदेश-मार्ग जो निर्गुणध्यान संधान के लिए निरुपमान सौख्य-संपत्ति देनेवाला, साधक जनों का निवास है और अमृतलिंग का निवासस्थान है —— ऐसा विशिष्ठ स्थान है काल-हस्तिपुर।'' कितना सुंदरवर्णन है। कवि यह वर्णन करके अन्य पुरों की स्तुति की अयोग्यता का समर्थन करता है। कवि कहता है कि कालहस्तिपुर मुक्ति देनेवाला

एक विशिष्टपुर है। अतः उस पुर के प्राणिसमूह मुक्ति पाने के लिए उत्तम, मध्यम और अधमस्थितियों का अभाव निरूपण करता है। जैसे —

अमितमुलैन जंतुवुल कक्कड नुत्तम मध्यमाध्यम

स्वमुलरयंग गान मपवर्ग रमासति बैंडिलयाडुचो

समतये गानि तत्पुरमुसाटिग नन्यपुरंबु लेन्नगा

नमरूनटन्न हस्तिमशकांतर मिंतियवालि चूचिनन्। — का · मा · पद्य· 22

— कालहस्तिपुर के सभी प्राणियों की स्थिति में अंतर नहीं, मुक्तिकांता को ब्याह करने में सभी प्राणी समान हैं ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं, ऐसे पुर के समान और कोई नहीं है, कोई पुर हो तो दोनों में हाथी और मशक के अंतर होता है।

और एक विशेष प्रकार की बात है। कालहस्ति पुरजनों की सभी कामक्रीडाएँ और तत्संबंधित प्रसाधनाएँ भी आध्यात्मिक विलासों के रूप में निरूपित की गयी हैं। जैसे

एलदोटल्वनमुल् वधूकुचमुल् मबू× द्रौंडबुलार्कंटिकिन्

फलमत्वालेर लंगजागमकलाबंधंबु लिच्छासनं

बुलु कोपंबुन बायुटल् तपमु संभोगंबु कैवल्य मं

बुल लीलारतिनुंडु मानवुल केंदुंगान मैचित्रमुल्। — का · मा · पद्य· 21

— कालहस्तिपुर के उपवन आध्यात्मिक साधना के लिए गहनारण्य हैं, स्त्रियों के पयोधर पर्वतसमूह हैं, ~~अधरोष्ठ~~ अधरोष्ठ आहारयोग्य फल हैं, कामकेली के बंधन योगासन हैं, प्रणयकलह से अलग रहना तप के समान है, ~~प्रणयकलह से अलग~~ रत्यानंद कैवल्यानंद है — ये सभी कार्यकलाप अत्यंताश्चर्यपूर्ण हैं।

इस तरह साधारण विषयों में अध्यात्मभाव का आरोपित करना कवि का

चातुर्य और आध्यात्मिक गहनता का परिचायक है।

पुर की वारांगनाएँ और मदमत्त हाथी भी क्रमशः योगियों और अवधूतों के रूप में चित्रित किये गये हैं। देखिए ।

परिचितविंदुनैपुणि नपारकलानुभवप्रसक्ति ना

दरस विवेकसंपद नदाशुकवाक्यसुधानुभूति मो

दरहितवृत्ति प्रस्फुट दनंगरहस्यविचारबुद्धि न

बुरमुन गामिनीजनुलु पोल्तुरु योगिजनंबुपोलिकन्। — का · मा · पद्यः 24

कामक्रीडा में निपुणता, अनन्त कालानुभवों की संपत्ति, विवेक की संपदा, तोतों मैनियों की आनंदानुभूति, किसी पर निर्मोहवृत्ति अर्थात् अन्य जनों के प्रति अ अनासक्ति, अंगजकला संबंधित आत्मविचारणबुद्धि — इन सब से भक्त वारांगनागण योगिजनों के समान विराजमान हैं।

अब मदमत्त हाथी की स्थिति देखिए ।

अरगँट गनुगोंट मदगति बूर्णाकृति प्रार्थना

करयुक्तिस्थिति मुक्तलोकभयशंकावृत्ति नुन्मत्तन

ब्यरति न्सत्वसमग्रत न्बुधितपद्माप्युन्नति लोपमे

पररंतावलकोटियोप्पु नवधूतप्रक्रियं बत्पुरिन्। —का · मा · पद्यः 25

— अर्थात् अर्धनिमीलित दृष्टि से देखना, धीरे से चलना, संपूर्ण अहंकार से मुक्त होकर प्रार्थना करने पर आहार लेना, मुक्तलोक के भय-शंका की निवृत्ति, उन्मत्तभाव से होना, सत्वसंपूर्णता मौनभाव से रहना उस पुर के हाथी के साधारण लक्षण हैं।

इन दोनों पद्यों में कवि ने वार कामिनी के द्वारा योगियों का और मत्त

हाथी के द्वारा अवधूतों का गुण सादृश्य प्रतिपादित किया है। दर्शन ग्रंथों में 'बालोन्मत्तवत् सिद्धपुरुषः' कहकर योगियों और अवधूतों का विलक्षण स्वभाव और व्यवहार का होना अनुश्रुत है। इन बातों से हमें यह ज्ञात होता है कि केवल भक्तियोग की अपेक्षा अष्टांगयोग, सिद्धासन, उड्यान जालंधरादिक सभी योग बंधनों में भी कवि की असमान प्रज्ञा रही थी।

माहात्म्य में अनेक स्थलों पर उनकी आध्यात्मिक चेतना के दृष्टांत मिलते हैं। अपनी तपस्या से सुवर्णमुखरी नदी को लाकर उसके तट पर श्रीकालहस्तीश्वर की प्रतिष्ठा करते समय अगस्त्यमुनि से की गयी स्तुति अत्यंत दार्शनिक परक है। 'सर्वम् शिवमयम्' के आध्यात्मिक सत्य को दृढपूर्वक मानने के कारण इनके प्रकृति वर्णन में आध्यात्मिकता और भी अधिक झलकती है। उदयाचल पर उगते हुए चंद्र कल्पित शिवलिंग के रूप में वर्णित करना अत्यंत मनोहर है। जैसे ——

उदयग्रावमु पानवट्ट, मभिषेकोदप्रवाहंबु वा
र्धि, घरध्वांतमु धूपधूममु, ज्वलद्दीपप्रभाराजिको
मुदि, तारानिवहंबु लर्पित सुमंबुलगा दमोहर सौ
ख्यदमै शीतगभस्ति बिंबशिवलिंगंबोप्पे प्राचीदिशिन्।।— का · मा · पद्य। 132

—— अर्थात् उदयाचल पानवट्ट है, अभिषेक किये गये। जल समुद्र है, संसार में फैले गये अंधकार अर्चना का धूपधूम है, चाँदनी दीपसमुदाय की कांति है, सितारों का समूह अर्पित पुष्पराशि है। चंद्रोदय ऐसा लगता है मानो शिवलिंग चंद्र का रूप धारण कर आये हों। कितना भावपूर्ण वर्णन है।

इसी प्रकार तिन्नना की माँ 'तंदे' के गर्भधारण चिह्नों का वर्णन भी अत्यंत सुंदर है। गर्भिणी स्त्री के लक्षण सामान्यतया इस प्रकार होते हैं। शरीर का पांडु-रवर्ण होना, चूचुकों की कालिमा होना, कमर की वृद्धि, जडता आदि हैं। इन

लक्षणों की शिवमयता का कवि ने इस प्रकार प्रतिपादन किया है। ''मुख की पांडुरता भसितांग की शोभा के समान है, चूचुकों की कालिमा शिव के कंठस्थ हालाहल विष की कालिमा है, अणोरणीयान्, महतो महीयान, मुक्तिवाले परशिवतत्व के समान पतली कमर की वृद्धि हुई है, स्वस्वरूप विचार में अनुसंधित चित्त की शांति की तरह जडता फैल गयी है।''

भसितांगराग शोभाविलासंबुतो ब्रतिवच्चु, नाननपांडुगरिम,
कंठहालाहलकालिमच्छवितोड नेनवच्चु, गुब्बचन्नोनल नलुपु,
परशिवाकृतितोड वरिवच्चु नणुतरंबनजालि यनतरंबैन नडुमु,
स्वस्वरूप विचार संप्राप्तशांतितो माद्पडु जित्तेयमानजडिम,
तरमगानंगसंक्रीड जरुपनीक बोहुदमु, गर्ममुन नुन्नतलनयु, डोशु
हैं डे प्रकाशिंपगलडनि चपुडु देलुपु करणि, वेंपोंदे नर्मदगामिनिकिनि।।

— का॰ मा॰ पद्य । 22

— श्री कालहस्तीश्वर की सेवा करके मुक्ति पानेवाली में दो वेश्याएँ भी हैं। बाल्यकाल से ही ये लडकियाँ शिव को ही अपने आराध्य मानती थीं। पालने में पडी हुई उनकी बालोचित चेष्टाओं का वर्णन कवि करता है। पालने में मणिमयालंकृत खिलौने की शोभा को वे अपलक देख रहती थीं। यह ऐसा लगता है मानों वे तारकमार्ग की साधना में रही हो :—

कनकपुवेरू सोयगमुगल्गिन मुत्तेपु प्रोल तोद्ललो
नुनिचि, यनर्घरत्नमुल नोप्पुगगुत्तुलु प्रोलभ्रलगा
द्दिटम, वेरगदि रेप्पसु सडिल्पक, तारकयोगमार्ग द
र्शन रतुलट्ल गन्गोनग सागिटि, कन्यलनन्य चित्तले। — का॰ मा॰ पद्य। 2

इस प्रकार कवि अपनी आध्यात्मिकभावना को संसार की प्रत्येक वस्तु में जतलाते हुए मानवजाति की प्रमुखता, उस की कर्तव्य परायणता की याद दिलाते हुए अंत में उसको एक चेतावनी भी देता है ——

दंतंबुल्पडनप्पुडे तनुवुनंदारूढि युन्नप्पुडे

कांतासंघमु रोयनप्पुडे जराक्रांतंबु गानप्पुडे

विंतल्मेन जोरंबनप्पुडे कुरु त्वेल्ल गानप्पुडे

चिंतिंपन्वले नोपदांबुजमुलन् श्रीकालहस्तीश्वरा। — का · श · पद्य । ।।०

— अर्थात्, दाँतों के गिरने के पहले शरीर में दृढता रहते समय, कामिनीजन विमुख होने के पहले, शरीर बूढने के बनने के पहले, कई प्रकार की विभूतियाँ शरीर में होने के पहले, बुढापे के कारण बाल सफेद होने के पहले, हेकालहस्तीश्वरा। आपकी चरणकमलों की सेवा करनी चाहिए।

यह कवि की आध्यात्मिकदृष्टि का अंतिम निर्णय है। यह अपने को ही नहीं, बल्कि समस्त मानवजाति के लिए एक चेतावनी भी है। अन्यप्रबंधकवियों की अपेक्षा धूर्जटि में अध्यात्मिकता का यह पुट प्रचुरमात्रा में मिलता है।

3 · 3 · 0 : कालहस्तीश्वरशतक —— मूल्यांकन :—

प्राचीन कवियों के शतकों में धूर्जटि कृत श्रीकालहस्तीश्वर शतक अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस में कवि ने राजाओं का और उनके धूर्त आचरणों का वर्णन किया है। प्रत्येक पद्य में कवि की आत्मपरक भक्ति प्रकट होती है। कवि के पश्चात्ताप और वैराग्य अच्छी तरह प्रकट किये गये हैं। शतक की शैली प्रौढ, धारापूर्ण है।

कुछ पंडितों का अनुमान है कि कालहस्तीश्वर शतक धूर्जटि की रचना है या नहीं। लेकिन शैली सौंदर्य और रचना-सौष्ठव के आधार पर यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि कालहस्तिमाहात्म्य के कृतिकर्ता ने ही इसकी रचना की है।

श्रीकालहस्तीश्वरशतक में कवि ने अपने मनोगत भावों को व्यक्त किया है। भगवान के प्रति भक्ति, दीनता और विनय, लौकिक प्रजा की चर्चाओं के प्रति विमर्श, राजाओं का दुर्व्यवहार, ऐहिकभोगों के प्रति वि विरक्ति, गतजीवन पर पश्चात्ताप, नीतिपरक उपदेश आदि अनेक विषय प्रस्तुत शतक में स्पष्ट रूप में व्यक्त किये गये हैं।

शतक का श्रीगणेश कवि के पश्चात्ताप हृदय से परमेश्वर में सींचित करते हुए होता है। कवि पश्चात्ताप होकर भगवान से निवेदन करता है कि हे देव। ६ (कालहस्तीश्वर।) चंचल बिजली सदृश यौवनरूपी मेघों से पापरूपी वर्षाधारा अत्यंत वेग से प्रवाहित होकर अब अपने मन रूपी कमल की कांति को खो बैठा हूँ। आपकी करुणारूपी शरत्तृतु को मुझे वरदान कीजिए। उस से मैं तृप्त होकर अब आपकी सेवा चिरकाल तक करूँगा। शतक ४।

कवि की वैराग्यपूर्ण भावना पराकाष्ठा को पहुँचती है। दृश्य जगत् की अनित्यता और उसके प्रति विरक्तिभाव प्रकट करते हुए कवि कहता है —— हे। कालहस्तीश्वर। यह ऐहिक संसार झूठा है, अनित्य है। मानव जो इस बात को जानते हुए भी हमेशा पत्नी, पुत्र और धन के लिए बहुत व्याकुल भाव से उनकी रक्षा के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है, शरीर को शाश्वत समझकर मोह बुद्धि से जीवित रहना पसंद करता है। लेकिन निश्चल भाव से कभी आपकी सेवा नहीं करता। शतक ३

माता, पिता, पत्नी, पुत्र, धन आदि बंधनों से मुझे बंदी क्यों बनाते हो? इनके बोझ से मैं आपकी सेवा नहीं कर सकूँगा, मोहरूपी इस संसार समुद्र में डूब जाऊँगा। अतः इस मायाजाल से मुझे बचाओ। शतकः 9

ऐहिक बंधनों के प्रति कवि अपना भय प्रकट करके कहता है कि हे प्रभु! पत्नी रूपी बंधन से बाँधकर, उसके द्वारा संतान प्रदान कर उस संतान के द्वारा लेन-देन रूपी बंधुत्व को बढ़ाकर एक बंधुत्वरूपी चक्र को फिराने के लिए स्त्री को चक्र का कील बना दिया हो। शतकः 30

ज्ञाति-बंधुओं के कूट व्यापारादि कुकर्मों के व्यक्त करके उनसे दूर रहने की इच्छा प्रकट करते हुए अपनी असमर्थता बताता है। हे कालहस्तीश्वर! जाति बंधु-बांधव जन-द्रोह करनेवाले हैं, उनके किये छल, कपट, ईर्ष्या आदि कुतंत्रपूर्ण क्रियाएँ असह्य हैं। फिर भी दोष भूयिष्ठ होने के कारण उनकी प्रतिक्रिया में न करके सन्यासी बनकर दूर रहना चाहता हूँ, लेकिन मेरा यह चित्त क्रोध नहीं छोड़ता है। मैं क्या करूँ? अर्थात् मैं असफल बन गया हूँ। — शतक : 69

इस प्रकार कवि ऐहिक बंधनों के प्रति विमुखता दिखाकर, राजाओं के मदमत्त पूर्ण प्रवर्तन पर द्वेषभाव प्रकट करता है। हे कालहस्तीश्वर! राजा महाराजालोग मदमत्त हैं, उनकी सेवा करना नरकतुल्य है, उनके द्वारा दिये हुए धन, कनक, वस्तु, वाहनादि समस्त भोग पदार्थ आत्मग्लानि वर्धक बीजक्षम हैं, अब तक पायी गयी उन वस्तुओं से मैं तृप्त बन गया हूँ, आगे उनकी जरूरत नहीं, इसलिए उस सुप्तावस्था से बचानेवाली) जाग्रत रूपी ज्ञानलक्ष्मी को प्रदान कीजिए। यह काफी है।

— शतकः 13

राजा जन्म को पाने से होनेवाले दुष्परिणामों को कवि बताता है। हे काल-हस्तीश्वर। राजा होकर चंद्र ने दुष्कृति पायी है, राजाओं का राजा होकर कुबेर कुबेर इमाजीव के रथ में दुख को देखा है, राजाओं का राजा होकर ही कुरुराजा (दुर्योधन) रण में मर गया, इसलिए सभी बंधुजनों में यह राज शब्द को मैं जन्म-जन्मांतरों में भी पसंद नहीं करूँगा। — शतक : 21

राजा की अधर्मप्रवृत्ति के बारे में बताते हुए कवि कहता है कि राजा धन की कामना करेगा तो धर्म कहाँ रहेगा? (अर्थात् राजा धन की लोलुपता से विधर्मी बन जाता है)। किस प्रकार सभी जातियों के लिए सुख होगा, पूज्य जनों केलिए आदर या मान्यता कहाँ मिलेगी? सभी जनसमूह का आधार कौन है? और भक्तजन आपके कमलरूपी विद्पद्मों की सेवा किस प्रकार करेंगे। (अतः राजा धर्मावलंबी होना जरूर है) शतक : 22

'राजा' शब्द पर संदेह प्रकट करते हुए कवि कहता है कि राजा बनते ही कृपा, धर्म, आभिजात्य, विद्याभ्यास से पैदा हुए क्षमा, सत्यभाषण, विद्वान और मित्रों के रक्षण, सज्जनता, बीसों बातों की जानकारी विश्वास आदि को क्या खोयेंगे? नहीं तो वे राजा दुर्बीजों में श्रेष्ठ क्यों बनते हैं? — शतक : 39

राजाओं की अहंमन्यता पर धिक्कार करते हुए कवि कहता है कि एक भूपाल ने (धर्मावलंबी होकर) चौदह महायुग राजपालन किया था, उदयास्ताचलों को आज्ञा पूरी कर चुकी है, ऐसे महापुरुषों की प्रगतिशील कथा को कोई कहने पर इन्होंने नहीं सुना है* क्या, हाय। ये राजालोग नीचबुद्धिवाले होकर मत्तता से क्यों मरते हैं? अर्थात् इनकी मत्तता और अहंमन्यता ही नाशकारक हैं।

— शतक : 38

लौकिक जनों की चित्तवृत्ति के बारे में कवियों कहता है कि मूढजन पुत्र संतान के लिए होते हैं। लेकिन यह उनकी भ्रांतिमात्र है। क्योंकि अनेक पुत्रसंतान पाने पर भी कौरव राजा ने धृतराष्ट्र किस उत्तमगति को पाया है और पुत्रहीन होने पर शुकमहर्षि किस दुर्गति को पाया है। क्या पुत्रसंतानहीनवालों को मोक्षप्राप्ति नहीं होती? भाव यह है कि मोक्ष प्राप्ति केलिए पुत्र संतान कोई आवश्यक वस्तु नहीं है।

— शतक : 23

मूढजन हाथियों, पालकी, घोडे आदि वाहनों के, माणिक्य, कामिनीजन, चित्रविचित्र वस्त्रों के, परिमल द्रव्यों के लोभ में पडकर उनको पाने के लिए राजाश्रय में अपनी जिंदगी वृथा बिताते हैं लेकिन ये सभी वस्तु मोक्षदान करने में असमर्थ है। अतः इन के लिए जीवन को व्यर्थ करना अविवेकमात्र है। — शतक: 3।

पंडितजनों के अज्ञान पर खेद प्रकट कर कवि कहता है कि वेदों के अभ्यास करके, शास्त्रों की महत्ता प्रबोध करते हुए, मन में तत्वज्ञान को सोचते हुए, शरीर की अनित्यता और परब्रह्म की नित्यता को जानने के आडंबरपूर्ण वचनों को सभा में प्रकट करते हैं। लेकिन उनका ज्ञान मिथ्याज्ञान है। क्योंकि वे चंचल चित्त को जीतकर शाश्वत सुख जानते नहीं। — शतक : 59

लौकिकजनों का स्वभाव बताते हुए कवि कहता है कि इस शरीर के द्वारा लब्ध सुख अत्यल्प है। लेकिन उसको संरक्षण अत्यंत श्रद्धापूर्वक करते हैं। जैसे एक रोज भोजन की कमी को नहीं सह सकते, धूप को न सहकर नीड के लिए ताकता है, ठंडी से बचाने केलिए अंगीठी माँगता है, वर्षा से बचाने केलिए किसी न किसी घर में घुसता है। ऐसे व्यर्थ तनु को हेय समझकर कोई भगवान की सेवा करने केलिए उद्यत नहीं होता। — शतक : 80

4.0.0 : मान-पत्र

चतुर्थ अध्याय : भावपक्ष

धूर्जटि अपने काव्य के कृति-भर्ता परमशिव को करने पर अनेक महादेशिक सार्वभौम संतुष्ट होकर ——

''धूर्जटी। नी शिवभक्ति काव्यसरणि गडु धन्यत बौद नव्यभाषा शतधा निर्गुमन रसस्थिति नोप्पु दलिर्प जेप्पुमी।'' का॰ मा॰ : ४

—— कहकर आदेश देते हैं। इस पद्य का 'शतधानिर्गुमन रसस्थिति' विचारणीय है। 'काव्यस्यात्मारसः इति' अर्थात् काव्य की आत्मा या अंगी रस माना जाता है। यही लाक्षणिकों का मत है। काव्य की परिभाषा के बारे में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों के मत यहाँ पर दिये जाते हैं।

1) 'वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्' —— विश्वनाथ 'साहित्यदर्पण'

2) 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' पं॰ जगन्नाथ 'रसगंगाधर'

3) 'निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषिता। सालंकार रसानेक वृत्तिर्वाक्काव्यनाम भाक्'

—— जयदेव 'चंद्रालोक'

4) 'रसोवैसः' —— वेद।

इस प्रकार काव्य की परिभाषा के बहुमत होते हैं और काव्य में मुख्य अंश रस माना गया है। 'काव्यस्यात्मा रसइति' सूत्र के अनुसार काव्य में रस का अस्तित्व अनिवार्य होता है। ऐसे रस का जब प्रतीयमान होता है, तब वह काव्य लोकोत्तराह्लादजनक समर्थ बन जाता है। इसलिए ही अर्वाचीन आलंकारिक 'रस-ध्वनि' को काव्य की आत्मा मानते हैं। रसध्वनि को ही धूर्जटि ने 'निर्गुमन रस-

स्थिति' के नाम से पुकारा है। ध्वनियों के सैकड़ों भेद हैं। इसलिए रस की निष्पत्ति भी सैकड़ों प्रकार की हैं। ऐसे शतधा प्रतीयमान रस को नई भाषा में रचने का महादेशिक सार्वभौम आदेश देते हैं। काव्यानंद ब्रह्मानंद का सम होता है। योगसा — धना के द्वारा गुरु ने ब्रह्मानंद की स्थिति को पाया है। उसी स्थिति को पाने केलिए काव्य निर्माण के द्वारा आनंदानुभूति अर्थात् रसानुभूति को पाने का आदेश देते हैं।

भरतमुनि ने रसों को आठ माना है। उसी मत को आधुनिक आलंकारिकों ने श्रव्यकाव्य के रूप में स्वीकार किया है। इन में ध्वन्यालोककार आनंदवर्धन और उसका व्याख्याकार अभिनवगुप्तपाद प्रमुख हैं। इन्होंने रस को काव्य के रूप में समन्वय करके शांतरस को नवम-रस के रूप में स्वीकार किया है। इनके मतानुसार शांतरस 'रसराज' है।

प्रस्तुत काव्य 'श्रीकालहस्तिमाहात्म्यम्' में शांतरस को अंगीरस या प्रमुखरस बनाकर काव्य की रचना की गयी है। काव्य के अंगरसों में 'शृंगार' प्रधानरस है। वीर, अद्भुत, हास्य और करुण अन्य रस हैं। काव्य की विविध कथाओं की एकसूत्रता करनेवाली शिवभक्ति है। शिवभक्त सर्वकार्यों को शिवार्पण करके शिव में ही तादात्म्य होना चाहते हैं। यही शांतरस की ब्रह्मभक्ति परमावधि है।

धूर्जटि की काव्य-रचना श्रीकालहस्तिपुर वर्णन से प्रारंभ होती है। यह वर्णन पद्यों में किया गया है। पूर्व कवियों की तरह धूर्जटि ने भी पुर का समग्र रूप वर्णन — पुर का स्वरूप, उसके सौध या भवन, कामिनी स्त्री, रथ, गज, तुरग, पदातिदल आदि का वर्णन करने पर भी सब में शिवभक्ति शिवपारम्य, ऐहिकवांछा-

विरक्ति, योगसाधन, शांतभाव और परमशिव में स्पष्टता प्रस्फुटित है। यह भी नहीं, तटाक, समुद्र, चंद्र — इन सब को शिवमय रूप में वर्णन किया है। यही धूर्जटि से कही गयी है 'नव्यभाषा' का रूप है। जैसे पहले कहा गया है, इस काव्य में वीर, अद्भुत, हास्य और करुण रसों का निर्वहण उचित रूप में किया गया है। साथ ही साथ बीभत्सरस भी कुछ हद तक अपना पात्र का पोषण किया है।

<u>वीररस</u> :— ब्रह्मा के पुत्र तीस हजार राक्षसों से अ उग्र का युद्ध करना और उन्हें मारना, साँप और हाथी का युद्ध, तिन्ननाा का आखेट वृत्तांत, मायाकिरात और अर्जुन का युद्ध, इन में वीर रस का पोषण यथेष्ट किया गया है। पात्रोचित और प्रसंगोचित शैली का निर्वहण हुआ है। वीररस के साथ साथ बीभत्स रस का पोषण भी किया गया है। आदिवासियों के मधुपान दृश्य और उनकी चेष्टाओं में हास्य रस को उचित स्थान मिला है। मुंडितशिरस्का दासी के विलाप में करुणरस प्रस्फुटित होता है। मुंडितशिरस्का दासी के शिर पर मायाजंगम के हस्त संपर्क से फिर शिरोज प्रकट होना और आलय में प्रवेशकरनेवाली वेश्यापुत्रिकाएं अंतर्हित होना आदि घटनाएं अद्भुतरस का पोषण करती हैं। इस प्रकार ऊपर के रसों का पो पोषण उचित प्रकार से किया गया है।

धूर्जटि की कविता में और एक विशेषता है कि रसों की योजना में एक रस के अंगों को उसके विरोधी रसों के (या विपरीत रसोंके) अंग बनाना है। इस प्रवृत्ति को हम अन्य प्रबंधकवियों में कम पाते हैं। उदाहरण के लिए यह देखिये :—

1) रौद्रांग सहजरूप से शृंगार का अंग होना।

प्रोक्किन योकलेम मोमेर्रगा जेयु दिट्टु गुरिमि नोक्क तीगबोंडि,

तलबट्टुकोनु नोक्क तरुणीललामंबु दुम्मनि यदलिंचु नोक्करीति,

पट्टकु मनि यानवेट्टु नोक्क वपूटि, येडुबु नोक्कपूबैदु वदन,

मुसुगुवेट्टुचु नोक्क मुद्दियय पवलिंचु, सिग्गुलेदनु नोक्कु जेलुव योकते,

मनियु गोपिंचि वलसिन माट्कि नुंडु वारिजाबुल दगिनट्लु गारवींचि

रतिसुखंबुल जोक्क नोरंत प्रोद्दु नजुडु मन्मथ राज्यसिंहासनमुन।

— श्री का॰ मा॰ पद्य : 18

2) श्लेष के बल पर शांतांग शृंगारांग होना :—

परिचितबंधमेपुणि, नपारकलानुभवप्रसक्ति, ना

दरसविवेकगैपद, सदाशुकवाक्यसुधानुभूति, मो

हरहितवृत्ति, ब्रस्फुटदनंगरहस्यविचाबुद्धि, न

प्पुरमुन गामिनीजनुलु पोल्तुरु योगिजनंबुपोलिकन्। — का॰ मा॰ पद्य: 24

3) श्लेष के बल पर वीर रस शांतरस होना :—

अरगंटं गनुगोंट, मंदगति, पूर्णाहंकृतिं, प्रार्थना

करभुक्तितख्याति, मुक्तलोक भयशंकावृत्ति, नुन्मत्तन

ब्यरति, न्सत्वसमग्रत, न्भुविततपद्मम्युन्नति, न्नोधमं

यरदंतावलिकोटि योप्पु नवपूतप्रक्रियं दत्पुनि।। — का॰ मा॰ पद्य : 25

4) भक्तिभाव शृंगाररस का अवरोध बनना :—

पिडिकेनुगुलकैंट बडिपोक युदुगनि वेडविल्तु बेडिमि विडुपु चूप,

गरमुन नुडकंबु कडुजल्तुकोनकुन्न वेमलनि मिहिरदाहमु दोलंग,

सरसुन जोच्चि तामरतुंड्लु मेसगक मानिनि याकटिमंट लार,

सिंहपोतमुलु पोर्सिंप बुद्दिटन मयातकाम्नि तहतह गुंकबार,

केद्दिटवेद्दलु वनमोव नेक्कलेक पंचवंगालमे पोव ब्राणलिंग

पूजनाविध्नमुनर्यदु बुद्दिट नद्दिट चिंतयन् वेकितनु लोनु देन्किोनिये।

— का॰ मा॰ पद्य : 125

— इस प्रकार कुछ रूप उदाहरण हमें मिलते हैं। इस प्रबंध में शृंगारप्रधान अंग रस है। जैसे कहा गया है, वीर, अद्भुत, हास्य, और करुण अन्य अंग रस हैं। शांतरस अंगीरस है। सभी अंगरसों में शृंगाररस मुख्य रूप से चित्रित किया गया है। यह 'अंगीरस' शांतरस से भी अधिक-सा दिखाई देता है। यह 'लाक्षणिकदोष' (आलंकारिक रूप से) होने पर भी,' बिना कामी, मोक्षार्थी नहीं बनता' सूक्ति के अनुसार धूर्जटि ने शृंगार रस को अपने काव्य में अधिक स्थान दिया है।

इस प्रबंध में रति की प्रशंसाएँ अनेक हैं। उदाहरणतया :

1) वाणे और कुट्टनाजंगम की कथा में :—

अ) सैतोपिंपि - - - - - रंजिल्लेडिन्' —— का॰ मा॰ पद्य : 36

आ) अनिकोता। - - - - - डाप्पि मान्पंगलवे? — ,, 37

इ) तानु गुमार जंगम - - - - जेलंगगन् —— ,, 42

ई) ल्लाड बट्टिटने गलल - - - नैलटन् — ,, 43

2) पार्वती और परमेश्वर का वन विहार : —

क) तन केटुवीट वेडुक्यो - - - - मुंद्दन् — का॰ मा॰ पद्य : 99

ख) अलसंवीगेलु - - - डिम्मरुन् 100

3) वाणी और हिरण्यगर्भ की कथा :—

क) वाचागोचर - - - - गोमती — पद्य : 13

ख) नाकौरिक लीडेरग - - - - मीननन् — 14

ट) अंबुन कैंतचुं - - - - - कथलन्विधातपुन् — 16

त) आरामंबुल - - - - शतवाणीभोगनिर्मग्नतन — 17

प) अधरपल्लवमान - - - - नोललाड़ु — 20

म) लोरपुगोरिक - - - - नूरट लेडु कूटमिन् — 21

4) आदिवासी स्त्री-पुरुषों का विहार :—

ग) मंचेलमीडनेभिक - - - - - चनुंगवमीद बर्बकन् — 10

ज) गुब्बचनुंगव, तैनिय - - - चंचलाक्षुल कोप्पुन — 13

द) - - - - - गुरिविंद पेर्लकु - - - पेट दीर्चि - - - - रात्मनायकुल गूडि —15

ब) तम इल्लांड्र - - - - सनम्मु लुप्पार्दिप गार्कुडुने — 16

इन वर्णनों में स्त्रियों के अवयवों का वर्णन किया गया है। रति प्रसंग वर्णनों के साथ संभोग वर्णनों की भी प्रचुरता इस काव्य में मिलती है।

1) दासी कुट्टना जंगमों का संभोग वर्णन :— इस में रति की आसक्ति दोनों में परस्पर होते हुए भी परमेश्वर को दासी के साथ रति की कल्पना कराना आभास मात्र ही हो गया है। पार्वती को दृष्टि में रखकर हो ऐसी कल्पना को धूर्जटि परिहरित करते तो अच्छा हुआ होगा।

2) वाणी हिरण्यगर्भों का संभोग वर्णन :— पूजनीय पुरातन दंपती का संभोग-वर्णन इतने विस्तृत रूप में करना कुछ लोग अनौचित्य मानते हैं। लेकिन कामांध

होकर प्रवर्तन करने पर ब्रह्मा का भी पतन होना अनिवार्य निरूपण करने के लिए धूर्जटि ने ऐसी रचना की होगी, ऐसा लगता है।

आदिवासी स्त्री पुरुषों के विहार वर्णन में बहुजनों के प्रति आसक्ति व्यक्त दिखाई देने के कारण यह भी रसाभास साबित हुआ है। इस प्रकार शृंगार रसाभास को ही अधिक से वर्णन करने से अंगीरस (शांतरस) को बाधक बनने के सत्य को धूर्जटि नहीं भूल गया।

रस योजना में शृंगार आदि पदों को उच्चरित करना नहीं चाहिए — यह आलंकारिकों का मत है, लेकिन इसका पालन करनेवाले कम हैं, धूर्जटि भी इसका अपवाद नहीं। उदाहरण के लिए :—

1) वीररसमीतिकेडु — पद्य : 57

2) शांतरस रूपमध्ये — 72

3) कारुण्य रसतरंबगु — 146

4) अद्भुत रसावहमु — 3

अलंकार :—

'अलं' शब्द का अर्थ है 'आभूषण'। इस से ही अलंकार शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। अलंकार शब्द का अर्थ भी आभूषण है। अतः काव्यालंकार का अर्थ भी कविता या काव्य का आभूषण होना सुस्पष्ट है।

अलंकार पद का निर्वचन करनेवाले में 'दंडी' कवि प्रथम है। उसका मत है 'काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते' — अर्थात्, काव्य को शोभा देनेवाले अलंकार है। जिस प्रकार स्त्रियों केलिए आभूषण शोभादायक हैं, उसी प्रकार अलंकार

भी काव्य को शोभा देनेवाले हैं —— यह आलंकारिकों का मत है। इसी अभिप्राय को भोज ने बढा-चढाकर इस प्रकार व्यक्त किया है ।

1) शब्दालंकार (बाह्य) — वस्त्र, गंधलेपन, और आभूषण आदि।

2) अर्थालंकार (आभ्यंतर) :— दंतक्षत, नखच्छेद, और कोपगृह प्रवेश आदि।

3) उभयालंकार (बाह्य और आभ्यंतर :— स्नान, धूप और विलेपन या गंधलेपन आदि।

काव्य में अलंकार वाचक द्वारा प्रतिपादित होने के अतिरिक्त रसों की तरह प्रतीयमान भी होते हैं। एक उदाहरण देखिए ।

चुरुकु जूपुन गालिन गोटल नुरुकु

नुरुकु जूपुल बुट्टिंचु नेरुकुवारि। — का० मा० पद्य : 7।

—— अर्थात्, शिव की तीक्ष्ण दृष्टि से जले हुए कामदेव को आदिवासी (एरुक) स्त्रियाँ अपनी उमडती हुई दृष्टियों से जन्म देने में समर्थ हैं। इस में व्याघात अलंकार वाच्य नहीं बना, केवल प्रतीयमानार्थ से ही वह व्यक्त हो रहा है।

धूर्जटि ने अपने काव्य में अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है। उन में शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों का अधिक प्रयोग किया। शब्दालंकारों में श्लेष, यमक और अनुप्रास प्रमुख हैं। अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, लोकोक्ति आदि अनेक अलंकारों का प्रयोग किया गया है।

नीचे इन अलंकारों का उदाहरण पूर्वक विवेचन किया जाता है :

<u>1) शब्दालंकार</u> :— अ) <u>यमक</u> :—

जहाँ एक या एक से अधिक शब्द बार बार प्रयुक्त हों एवं उनका अर्थ भी प्रत्येक बार भिन्न हो वहाँ यमक अलंकार माना जाता है। यथा ——

मोगुलु मोगुलुन मेरुमुलु निगुड दोडगे

मेरुगु—मेरुगुन नुरुमुलु मेडु कोनियै। — का॰ मा॰ पद्य ः 127

— यहाँ पहली पंक्ति में 'मोगुलु' दो बार प्रयुक्त है और दोनों बार उसका अर्थ मेघ है एवं दूसरे मोगुलु का अर्थ तीव्रता है। उसी प्रकार दूसरी पंक्ति के 'मेरुगु' शब्द दो बार प्रयुक्त होने पर भी अर्थ भिन्न है।

आ) अनुप्रास अलंकार ः—

जहाँ छंद के चरणों के अंत में आए हुए वर्णों में समानता होती है वहाँ अंत्यानुप्रास अलंकार होता है। यह तुकांत भी कहा जाता है।

माटलाड वलेचि मरचिपोयेडु वारु

नडवबोवुचु दोद्दुपडेडु वारु

नूरकुंडवमनि युंडनोपनि वारु

लेचेदमनि लेवलेनि वारु।

— यहाँ प्रत्येक चरण के अंत में 'वारु' आया है जिस में समानता है।

इ) श्लेषालंकार ः— किसी शब्द का एक बार प्रयोग होने पर भी उसके अर्थ एक से अधिक हों तो वहाँ पर 'श्लेष' अलंकार माना जायेगा। 'श्लेष' का शाब्दिक अर्थ भी 'चिपका हुआ' है। अतः श्लेष अलंकार में एक से अधिक अर्थ शब्द में चिपके रहते हैं। यथा —

बलमुललो रथांगनिनदंबु, परागमु, राजहंस सं

कुलमु तिलीमुखभ्रमणघोषमु, नव्यकबंधमु त्थमु

ज्वल सरपुंडरीकमुलु जालगलिग, महाहवस्थितिन्

बोलुपु वहिंचु नक्कोलनि पीतकु नोव्यन अेरि, यच्चटन्।

इस पद्य के कुछ शब्दों में एक से अधिक अर्थ इस प्रकार है :

1) दलमुललो —— 1) कमल पत्रों में 2) सेनाओं में

2) रथांग —— 1) चक्रवाक पक्षियों के 2) रथ चक्रों के

3) राजहंस —— 1) राजहंस (मराल), 2) राजश्रेष्ठ

4) शिलीमुख —— 1) बाण 2) भौंरा

5) कबंध —— 1) पानी, 2) धड़ (सिर, भुजा आदि रहित शरीर)

6) पुंडरीक —— 1) सित कमल, 2) श्वेत छत्र (छत्तर)

इस प्रकार 'शब्दालंकार' का यह पद्य उत्तम उदाहरण है।

जहाँ अर्थ द्वारा काव्य के सौंदर्य में वृद्धि हो वहाँ अर्थालंकार होता है। महाराजा भोज ने कहा है कि ——

अलमर्थमलंकर्तुं यद्व्युत्पत्त्यादिवर्त्मना।

ज्ञेय जात्यादयः प्राज्ञैः तेऽर्थालंकारसंज्ञया।।

—— अर्थात्, अर्थ-गांभीर्य के प्रदर्शक को अर्थालंकार माना है।

1) उपमा :—— उपमा का सामान्य अर्थ है किसी वस्तु की किसी दूसरी वस्तु से समानता के आधार पर तुलना करना। अतः जहाँ किसी वर्णित (प्रस्तुत) वस्तु की उसके किसी विशेष गुण, क्रिया, स्वभाव आदि की समानता के कारण अप्रस्तुत से तुलना की जाए तो वहाँ उपमालंकार होता है। जैसे ——

अब्केराग्रणि बाणपातमुल मांसाकारकैरु त्वयिं

बुब्बुल् सलिलन यद्लुगा वलीच यार्पुल् निंगिमुद्दंग, मी

प्रौढ्विद्ले यडगेंतु मेंचु, वडि नुग्गु बाकि रूम्मत्तुले,

गुब्बल् डेग नेविर्चि पेर्चिन गतिं गोलाइतं बोप्पगन्।। — का · मा · पद्य: 53

—— इस पद्य का भाव यह है कि जिस प्रकार गुब्बल् (कपोत जैसे पक्षी) बाज पक्षी से सामना करते हैं उसी प्रकार 30 हजार राक्षस उग्र से सामना करते हैं। इस में राक्षस और 'उग्र' उपमेय वस्तुएँ हैं और गुब्बल् और बाज पक्षी उपमान हैं। यहाँ उपमेय (प्रस्तुत) वस्तु की तुलना उपमान (अप्रस्तुत) वस्तु से की गयी है।

2) उत्प्रेक्षा अलंकार :— जब उपमेय में उपमान की संभावना या कल्पना कर ली जाये, तब उत्प्रेक्षा अलंकार माना जाता है।

उदयप्रावमु पानवट्ट, मभिषेकोद प्रवाहंबु वा

र्धि, धरध्वांतमु धूपधूममु, ज्योत्स्नदीपप्रभाराजि कौ

मुदि, तारानिवहंबु लर्पितसुमंबुलुगा वमोवूर सो

रयुदमे शीतगयस्ति बिंबशिवलिंगंबोप्पे ब्राचोदिशन्।। — का · मा · 132

— इस पद्य में उगते हुए चंद्र में शिवलिंग की संभावना या कल्पना की गई है। अतः इस में उत्प्रेक्षालंकार है।

उदयाचल में पानवट्ट की, समुद्र में अभिषेकजल की, चारों ओर व्याप्त अंधकार धूप के धूम की, ज्योत्स्ना में दीपों की पंक्ति की, तारे में समर्पित फूलों की संभावना करके उगते हुए चंद्रबिंब में शिवलिंग की कल्पना की गई है।

3) अर्थांतरन्यास अलंकार :— किसी साधर्म्य का अथवा वैधर्म्य का प्रदर्शन करने के लिए जब सामान्य का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से समर्थन किया जाये तब वहाँ अर्थांतरन्यास अलंकार होता है। सामान्य का अभिप्राय है सर्वसाधारण

से संबंधित बात तथा विशेष से तात्पर्य है किसी विशेष व्यक्ति से संबंध रखनेवाली बात है। यथा —

निलिचिन जूचि, मींड धरणीपति निष्ठुरभाषलाडि, वे
ल्पुल भ्रमियिंचु नी चिगुरुबोडि मनोहरमूर्ति रेजकुन्
मेलितियगुंगदायनक, येगम निर्दय चित्तवृत्ति मे
दलगोरिरिंगिप बंचे, नौक तप्पुनु गावरुगा नृपालकुलु। — का · मा · 48

— दासी की मनोहरमूर्ति की परवाह न सोचकरके राजा ने उसके शिरोजों को कटवा दिये। राजा लोग एक ही भूल को भी नहीं क्षमा करेंगे। पद्य के प्रथम, द्वितीय, तृतीय चरणों में एक विशेष बात (राजा से दासी के शिरोजों का कटवाना) कही गयी है, जिसका समर्थन अंतिम चरण के भाग से (राजालोग एक ही भूल को नहीं क्षमा करेंगे) किया गया है।

4) क्रमालंकार :— पहले कुछ वस्तुओं का उल्लेख करके उनके गुण अथवा कार्य का जहाँ उसी क्रम से वर्णन किया जाता है वहाँ क्रमालंकार होता है। उदाहरण :—

तमयिल्लाइ मनोहरावयवसौंदर्यबुलो साम्यव
गंमु पाटिंपगनो, किरातुलु निजागारंबुल गट्टिट, सिं
हमयूरीहरिणेभशावमुल नाडा। पेंतु शावक द
हमणी मध्य कचेक्षण स्तनमुलुत्पादिंप गाकुंडुने। — का · मा · 16

— इस पद्य में आदिवासी स्त्रियों के कटि, केशपाश, आँखों और स्तनों का सिंह, मयूरी, हिरण और हाथी से क्रम में साम्य किया गया है। अर्थात् उन स्त्रियों की कटि सिंह की कटि से, केशपाश मयूरी की पूँछ से, आंख हिरण की आँखों से और

स्तन हाथी के कुंभस्थल से साम्य दिखाया गया है। यह 'मत्तेभ' नामक छंद है जिसका विवेचन पहले किया गया है।

5) विरोधाभास अलंकार :— वास्तविक विरोध न होते हुए भी जहाँ विरोध का आभास मालूम पड़े वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है। यथा —

जिह्‌वनालुक, जलमु राजीवदलमु नडुमु गुम्मरपुरुगु देहंबु, ग्रच्च

कायबूडिद बोरयनि करणि, विट्‌ल गलिसियु गलियकुंडगवलयु ललन।

— का · मा · पद्‌य : 28

— जीभ पर तेल रहने पर भी नहीं लगता, कमलपत्र पर जल पड़ने पर भी जल उन पत्रों को न लगेगा, कुम्मरपुरुगु (एक प्रकार की कीड़ा जो पंक में रहता है) पंक में रहने पर भी पंक उसे कहीं भी नहीं लगेगा, लतकरणि धूल में रखने पर भी धूल उसे न लगेगा — ये सभी वस्तुएँ उन उन पदार्थों में रहने पर उन से संबंध रखने की संभावना होती है। लेकिन वास्तव में नहीं। उन में विरोध आभास मात्र है।

6) लोकोक्ति अलंकार :— प्रसंगानुवश किसी लोक-प्रसिद्‌ध कहावत के प्रयोग में लोकोक्ति अलंकार होता है। उदाहरण :—

इवि येंकेंडुलु पट्‌टेन् सवनंबुलु गट्‌ट नाकु शंभुनिकोरकुन्

तुवि गुम्मरि कोक पेट्‌टुनु, गुवि कोक पेट्‌टन्ना माटकु नीदृग्नरि कुब्जेन्।

— का · मा · पद्‌य : 100

कई सालों में बने हुए तंतु भवन एक बार जलने पर यह कहावत प्रयोग की गयी है। 'तुवि गुम्मरि कोक पेट्‌टुनु गुवेकोकपेट्‌टु' (साल कुम्हार से बने हुए बरतन एक ही लकड़ी की मार से ध्वंस किया गया है) कहावत का सफल प्रयोग हुआ है।

7) रूपक अलंकार :— जब उपमेय में उपमान का निषेधरहित आरोप किया जाये तो रूपक अलंकार होता है। रूपक का मतलब ही रूप ग्रहण करना है, अतः इस अलंकार में प्रस्तुत (उपमेय) अप्रस्तुत(उपमान) का रूप ग्रहण कर लेता है।

उ: भयमुनु तोल्लिकन् विमलभाववसुंधर बेल्लगिंचि, भ
क्ति यनेडु बिल्तुबेट्टि, व्रतधीनदिसुम्मडवारि जल्लगा,
नयमुन नंकुरिंचुनु, ननल् गोनले येलमिं जेलंगि, त
न्मयमुग ब्रोक नंचनग, नारल में पुलकंबु लेपडेन्। — का · मा · पद्य: 122

— चंपकमाला छंद का विवेचन पहले किया गया है। प्रस्तुत पद्य में 'भय' (उपमेय) में 'कुद्दाल' (उपमान) का निषेध रहित आरोप किया गया है, इसी प्रकार 'भाव' (उपमेय) में 'वसुंधरा' (उपमान), 'भक्ति' (उपमेय) में 'बीज' (उपमान), 'व्रतधीन (उपमेय) में 'मडवारी (उपमेय) (उपमान) का निषेधरहित आरोप करने के कारण यहाँ रूपक अलंकार है।

8) रूपकातिशयोक्ति अलंकार :— जहाँ पर उपमेय का कथन न करके केवल उपमान के कथन द्वारा उपमेय का ज्ञान कराया जाय वहाँ रूपकातिशयोक्ति अलंकार होता है। उदा :—

सायंकाल रघुक्षितीश्वरुडु, केंजायन्मृगंबोप्पगा
डान्वच्चि, तमिस्रतीव्रतर कांडव्रात पातंबुगा
जेयं जक्रवपूपरासुलकु विश्लेषव्यथापादिये,
माया हेममृगंबुना, बडिये नम्मार्ताडुडस्ताद्रिपै। — का · मा · पद्य: 87

— यह पद्य 'शार्दूल' नामक छंद है जिसका विवेचन पहले किया गया है। अर्थात्, सायंकाल नामक रघुराजा लालरंग रूप मृग के समीप आकर घने अंधकार बाणों से

नाश करने से चकवी सीता को दुख का कारण बनकर कुहना सोने का हिरण अस्ताचल में गिर गया। अर्थात् अदृश्य हो गया। इस पद्य में रघुवितेश्वर (रघुराम) का कथन न करके उनका बोध सायंकाल आदि उपमानों से कराया गया है। अतः यहाँ 'रूपकातिशयोक्ति' अलंकार है।

9) अत्युक्ति अलंकार :— जब रोचकता लाने के लिए किसी के विषय में बढ़ी-चढ़ी हुई झूठी बात कही जाती है तब अत्युक्ति अलंकार होता है। यदि उक्ति में असंभव हो तो अत्युक्ति होती है।

सी: तल्लिगाननि लेडिपिल्लकु जन्निच्चि पेंचु बेब्बुलि तन बिड्डयट्ल,
वेविकंबुन गूडुवप्पि नेलनुबड्ड राचिलुक बोवल ब्रोचुबिल्लि
एंडचे ग्रागिन कोंडकोयिल वेच्चि येलमाविनीडल निलुपु ग्रोति
येडबासिपोयिन विडियेनुगुल गूर्चि करिविरहंबु केसरि हरिंचु
स्तनितमुल केगबडि वच्चु शरभमुलनु बट्टिटयोत्पन धात्रिपैबेट्टिकाचु, गंग
भेरुंडपक्षुल गालगियजुनि याश्रमम् शांतरसरूपमय्येनपुडु।।

— इस पद्य में ब्रह्मा के आश्रम (तपोवन) के वातावरण शांतरस प्रधान रूप में वर्णित किया गया है। ''माँ से बिछुड़े हुए हिरण के शावक को बाघ अपने स्तन्य देकर पोसता है। घोसलों से गिरकर पृथ्वी पर पड़े तोते बच्चों को बिल्ली रक्षा करती है। धूप के मारे कोयिल को बंदर आम की छाया में रखकर उसकी रक्षा करता है। बिछुड़े हुए हाथियों को संयोग कराके हाथी के विरह को सिंह दूर करता है। गर्जारव से भाग आए शरभमृगों को गंडभेरुंड पक्षी बचाता है।'' इस प्रकार विरोधी पशु-पक्षियों का मैत्रीपूर्ण वातावरण यहाँ सूचित है जो असंभवपूर्ण विषय है। अत्युक्तिपूर्ण वर्णन है। इसलिए इस पद्य में अत्युक्ति अलंकार है।

इसी तरह महाकवि धूर्जटि लयानुकूल शब्दालंकारों का प्रयोग करने में कुशल हैं। साम्यमूलक उपमा, रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग रस की व्यंजना के लिए अनुकूल ही रहा है। यों काव्य की आत्मा रसव्यंजना के सौंदर्यवर्धक होते हैं

4·2·0। वर्णन :—

वर्णनों की योजना में धूर्जटि किसी प्रबंध कवि से कम नहीं है। प्रस्तुत प्रबंध में वर्णन योजना अपनी एक विशिष्टता रखती है। कालहस्तिमाहात्म्य में सभी छोटी छोटी कहानियाँ हैं। विशद वर्णनों के साथ उन्हें कवि ने विस्तृत किया है। जैसे पहले कहा गया है, धूर्जटि के वर्णन और अन्य प्रबंध कवियों के वर्णनों में एक प्रधान है। धूर्जटि के सभी वर्णन शिवमय हैं। उदाहरण के लिए देखिए :—

उगते हुए चंद्रमा शिवलिंग की तरह है। जैसे —

उदयग्रावमु पानवट्ट, ममिषेकोद प्रवाहंबु वा

र्धि, धरध्वांतमु धूपधूममु, ज्वलद्दीपप्रभाराजिको

मुदि, तारानिवहंबु लर्पितसुमंबुलुगा हमोदूर सो

ध्यदमै शीतगभस्ति बिंबशिवलिंगं बोधे प्राचीदिशिन्। — का·मा·पद्य· 133

— अर्थात्, उदयाचल पानवट्ट की तरह है, लहरवाला समुद्र अभिषेक का जल है, अस्पष्टसी निशा धूप है, ज्योत्स्ना दीपों की पंक्ति है, अर्पित कुसुम तारासमूह है। इन सब से प्रकाशित चंद्रबिंब अंधकार को दूर करते हुए पूरब की दिशा में ऐसा उदित होता है मानो शिवलिंग का आविर्भाव हो।

प्रबंध परंपरा के अनुसार काव्य का प्रारंभ कालहस्तिपुर वर्णन से हुआ है।

उसके कामिनीजन योगिजनों की तरह है, पुर के सभी चराचर जीव शिवमय है।

प्रबंध में बाईस अष्ट वर्णनों का होना अनिवार्य है — यह प्राचीन प्रबंधों की परिपाटी है। लगभग ये सभी वर्णन प्रस्तुत प्रबंध में धूर्जटि ने किया है। कुछ विषय दुबारा और तीन बार भी वर्णित किया गया है। देखिए : पुरवर्णन :

1) काव्य का श्रीगणेश कालहस्तिपुर वर्णन से होता है। मधुरापुरवर्णन दुबारा किया गया है। पहले बारम नत्कीर की कथा में और दूसरी बार वेश्यापुत्रिकाओं की कथा में।

2) ऋतुवर्णन :— ''तपमोनरिंलु गाक हिमधाम किरीटुनिगूर्चि - - - - कडुवेडुक बोंदग'' — इस प्रकार विंध्यारि अगस्त्यमुनि ने निश्चल रूप से तप किया है। उन्होंने बहुकाल तक तप किया है और कालक्रम के अनुसार प्रकृति में आनेवाली विकृतियाँ उनकी तपोनिष्ठा को विचलित करने में असमर्थता को सूचित करने के लिए धूर्जटि ने ऋतुवर्णन किया है। इस संदर्भ में ग्रीष्म, वर्षा और शिशिर ऋतुओं का वर्णन किया गया है जिन में धूर्जटि के संयमन का पालन प्रतिभासित होता है।

3) यात्रा-वर्णन :— शिव के द्वारा शापित नत्कीर तीर्थयात्रा पर जाना अत्यंत विस्तृत रूप में वर्णित किया गया है। मधुरापुर की वेश्यापुत्रिकाओं का कालहस्तिपुर के लिए यात्रा करना। दोनों यात्राओं के वर्णन भिन्न भिन्न दिशाओं में किये गये हैं।

4) शैलवर्णन :— दक्षिणकैलासगिरि का वर्णन अनेक प्रकार से प्रबंध के कई स्थलों पर किया गया है। वाली के द्वारा लाया गया पर्वत और कैलासगिरि का वर्णन इस प्रकार शैलवर्णन कई स्थलों पर किया गया है।

5) आखेट :— नव युवक तिन्नना को अनेक प्रकार के आखेटों की पद्धतियाँ

बताने के लिए वनचरों ने जब सलाह दी है, नायनाथ मानकर आखेट केलिए आवश्यक वस्तुओं और साधनों का इंतजाम करवाता है। यहाँ आखेट का विस्तृत वर्णन किया गया है। आखेट के पहले मनाया हुआ 'कादेनि जातर' का भी विपुल वर्णन द्रष्टव्य है।

<u>6) सागर वर्णन</u> :— दोनों वेश्यापुत्रिकाएँ जो कालहस्ति के लिए निकलती हैं, रास्ते में विर्दबरेश्वर का दर्शन करती हैं और उस देव के सामने स्थित समुद्र का भी दर्शन करती हैं। उस सागर का वर्णन भी अत्यंत विस्तृत रूप में किया गया है।

<u>7) ऋषियों का आश्रमवर्णन</u> :— ब्रह्मा अगस्त्यमुनि अर्जुन, वशिष्टमुनि आदियों ने जो तप किया है उन उन तपोवनों का वर्णन धूर्जटि ने अत्यंत विस्तृत रूप में किया है। यह भी नहीं, तपोवनों में रहनेवाले विरोधी पशु, तपकी महिमा के कारण मैत्री के रूप में रहने का भी वर्णन है।

<u>8) युद्ध-वर्णन</u> :— उग्र का तीस हजार राक्षसों के साथ युद्ध करना, कुहना-किरातार्जुनों का युद्ध, उल्लेखनीय है। युद्धक्षेत्र वर्णन अत्यंत विस्तृतरूप में किया गया है।

<u>9) विजय (जीत) वर्णन</u> :— उग्र की जीत और अर्जुन की जीत उल्लेखनीय है। लेकिन विजयोत्सव का वर्णन नहीं किया गया है।

<u>10) मद्यपान मत्तचेष्टाएँ</u> :— कादेनि जातर के संदर्भ में आदिवासियों का मधुपान मत्त चेष्टाएँ वर्णित हैं।

<u>11) वनविहार</u> :— पार्वती और परमेश्वर का वन विहार इसका एकमात्र उदाहरण है।

12) <u>कन्यांग सौंदर्य वर्णन</u>:— वेश्या पुत्रिकाओं के अंग सौंदर्य का विपुल वर्णन किया गया है।

13) <u>चंद्रोदय वर्णन</u> :— सांप से बदला लेने को उठे हुए हाथी उस शाम को देखता है और अगले दिन की प्रतीक्षा में है। शाम का चंद्रोदय वर्णन किया गया है। इस संदर्भ में चंद्रोदय और चंद्रास्तमय, चकोरों के ज्योत्स्ना के प्रति आकर्षण वर्णित है।

14) सूर्योदय :— उपर के संदर्भ के अतिरिक्त वेश्या पुत्रिकाओं की कालहस्ति यात्रा समय में भी सूर्योदय वर्णन किया गया है।

15) सुरत वर्णन (संभोग) :— दासी कुट्टना जंगम की कथा में और वाणी हिरण्य-गर्भी की कथा में सुरति का वर्णन किया गया है।

16) दोहद वर्णन :— सरस्वती का गर्भधारण करना, मिल्लनारु संदे का गर्भधारण और वेश्यामाता माणिक्यवल्ली का गर्भ धारण करना अत्यंत सहजरूप से वर्णित किया गया है।

17) पुत्रजनन वर्णन :— सरस्वती का ~~मुद्दु~~ अमुदु को जन्म देना और संदे तिम्मना को जन्म देना वर्णित किया गया है। लेकिन पुत्रोत्सव का वर्णन अप्राप्य है।

इस प्रकार प्रबंध संप्रदाय के अनुसार सभी विषयों का वर्णन अत्यंत सहजरूप से किया गया है। इन वर्णनों में से सत्रह के उदाहरण दिये गये हैं। बाकी पाँचों वर्णनों का भी उल्लेख जगह जगह पर किया गया है। लेकिन वे स्पष्ट नहीं दिखाई देने का कारण उनके उदाहरण नहीं दिये गये हैं।

भक्ति की अतिरेकता से उत्पन्न सात्विक भावों को धूर्जटि ने अत्यंत सरसरूप में चित्रित किया है। देखिये :—

<u>1) पुलकों का होना :—</u>

मघमनु सोक्तिकनु, विमलभाव वसुंधर बेल्लगिंचि, भ
क्ति यनेडु वित्तुवेट्टि, व्रतधीनदि सेपडवारिजल्लगा,

नयमुन नैंकुरिंचुचु, ननलु गोनले येलमिंजेलगित

भयमुग ब्राके नंचनग, नास्लमै पुलकंबुलेर्पडन्। — का॰ मा॰ पद्य॰ 122

— अर्थात्, भयरूपी कुदाल से निर्मलभावरूपी पृथ्वी को उखाडकर (उन में) भक्ति रूपी बीज को बोकर, व्रत रूपी जल को सींचने पर बीज अँकुरित होकर लता के रूप में क्रमवृद्धि पाने के तरह उन बालिकाओं के शरीर में पुलक होने लगी। (इस में पुलक नामक सात्विक भाव चित्रित है।)

2) स्वेद होना :—

पुलककलिकावितानमु विलसिग, दोरगु पुव्वुदेनियलगतिन्

ललनामणि तनुलतिका कलित कलित प्रस्वेदवारिकणमुलु पोडमेन्।

— पद्य : 123

— अर्थात्, पुलक रूपी वितान को देखने पर पुष्प के मकरंद बिंदु गिरने की तरह उन बालिकाओं की शरीर रूपी लता से पसीना रूपी जल की बूंद झलकने लगीं। इस में 'स्वेद' नामक सात्विकभाव सूचित है।

3) कांपना (कंप) :—

आवानदडिसि, वडंकेडु केवडि, गंपंबु वोडमे, गामिनुलु महा

देवुनि मुक्तिवधूटी जीवितनायकुनि, सेवसेयंगदियन्। — का॰ मा॰ : 125

— अर्थात्, जब उन वेश्यापुत्रिकाएं मुक्तिकांता के पति उस महादेव की सेवा करने लगी, उनका शरीर वर्षा में भीगकर कांपने की तरह, कांपने लगा। इस में 'कंप' नामक सात्विकभाव सूचित है।

4) बाष्पोद्गम से होना :—

आलतकु मीमलु सागु विशालतकुं, बौतनीरु चालदनुगतिन्

बालाचपलांचित दृक्नीलांबुद, मंबुवृष्टिनिलुकमकुरीतान्। — पद्य : 124 — अर्थात्, उस लता के विस्तार होने के साथ पुष्परुप से पानी की प्राप्ति होने की तरह उन बालिकाओं के चंचल नयनों के कोरों से दृष्टि रुपी काले बादलों ने बिना रुकावट के बरसाये हैं। इस में 'बाष्पोद्‌गम' नामक सात्विकभाव सूचित है। इस प्रकार धूर्जटि ने कुछ सात्विकभावों का प्रबंध में यत्र-तत्र निरुपण किया है।

नवविधा भक्ति सुप्रसिद्‌ध है। भगवान् की कथा का श्रवण, उनके गुणों का कीर्तन, उनका नामस्मरण, उनके पादसेवन, उनका अर्चन, पादवंदना, दास्यभाव प्रकट करना, सख्यभाव से उनकी सेवा करना, संपूर्ण आत्मनिवेदन, — ये हैं नवविधा भक्तिपद्‌धतियाँ। इन सब के उल्लेख प्रबंध में हुआ है।

4·3·0 : धूर्जटि की कविता के गुण :—

श्रीकालहस्तिमाहात्म्य प्रबंध में अनेक कथाएँ दिखाई देती हैं। प्रत्येक कथा एक खंडकाव्य के रुप में चित्रित की गई है। इन सब कथाओं में नत्कीर की कथा बड़ी महत्वपूर्ण है। स्कंदपुराण में नत्कीर की कथा है। स्कंद पुराण की कथा में और कालहस्तिमाहात्म्य के नत्कीर की कथा में साम्य के साथ साथ अंतर भी है। स्कंदपुराण का नत्कीर बड़ा मूर्ख है, असूयाग्रस्त है। लेकिन माहात्म्य का नत्कीर इस से भिन्न है। वह सीधा-सादा है, कविताभिमानी है। इस बात की पुष्टि परमशिव से कविताविषयिक वाग्विवाद से होती है।

हरिद्‌विज ब्राह्मण की दरिद्रता मिटाने के लिए परमशिव एक पद्य लिखकर ब्राह्मण को देता है। ब्राह्मण उस पद्य को राजा की सभा में पढता है। लेकिन नत्कीर उस पद्य के अर्थ में गलती उठाकर दिखाता है। 'पार्वती की नियम में यह

नहीं है। कहकर परमशिव उस प्रश्न को टालना चाहता है। नत्कीर नहीं मानता और अपनी बात पर ठनकर बैठता है। अपनी महिमा दिखाकर परमशिव अपने फालनेत्र को दिखाता है। लेकिन केवल कवितादुरभिमानी नत्कीर निर्भीकता से 'फाल-नेत्र ही नहीं, शिर के चारों ओर नेत्र दिखाने पर भी पद्य को शुद्ध नहीं कह सकते।' यह कहकर परमशिव को ललकार देता है। तब परमशिव कुपित होकर नत्कीर को कोढ़ै बन जाने का शाप देता है। शपित नत्कीर 'मैं क्यों कविताभिमानी बना हूँ? शंखपीठ पर अन्य कवियों की तरह न रहकर परमशिव से क्यों झगड़ा किया है?' कहकर अपने पश्चात्ताप को व्यक्त करता है। उस में स्कंदपुराण के नत्कीर की तरह द्वेष या असूया दिखाई देते नहीं। तमिल की कथा के शिव के पद्य में 'मयूरगमन' पद है लेकिन धूर्जटि ने उसे बदलकर बदल कर 'सिंधुराजगमन' का प्रयोग किया है। इस कथा में एक विषय जानने योग्य है। राजसभा में नत्कीर के द्वारा परिचयित हरीद्विजब्राह्मण परमशिव को अपने पद्य लौटाते हुए कहता है:

तानेरिगिन विद्य नृपास्थानमुलो नैरप गीर्ति समकूरुँगा

केनरुन्कु वरविद्या धीनत भूपाल नमत देजमुगलदे? — पद्य : 162

—— अर्थात्, किसी भी व्यक्ति को अपनी स्वानुभवपरक विद्या को किसी राज सभा में प्रदर्शित करने पर कीर्ति मिलेगी। दूसरों की विद्या से किसी को सम्मान नहीं मिलेगा। यह एक कटु सत्य है। ऐसी अनेक घटनाओं को धूर्जटि ने देखा हुआ होगा।

प्रौढता और माधुर्य —— ये दोनों धूर्जटि को अत्यंत प्रिय काव्यगुण हैं। अपनी कविता में इनको धूर्जटि ने अच्छी तरह निभाया है। श्रीकालहस्तिमाहात्म्य की सभी कथाएँ कुट्टनाजंगम रूप परमशिव के द्वारा यादवराजा को सुनाने की कल्पना है। कथाओं को सुनाने में परमशिव ने प्रौढता और माधुर्य शब्दों को अनेक स्थलों पर

व्यक्त किया है। जैसे :— ''कनवुडु गुहना - - - - - वननिधियै विनुमट्चु वाचाप्रौढन्।'' पद्य : 92, ''गौरीशुंडु - - - - - दत्तावधानुंडवे।'' पद्य: 94 ''लूताधीश्वरू - - - - - वीनुलक्कुन्'' — पद्य: 108 वास्तव में ये गुण धूर्जटि की कविता में विद्यमान हैं जो परमशिव के मुखतः प्रकटित हैं। कविता की कुछ अच्छी बुराइयों को निर्धारित करने की एक घटना प्रस्तुत प्रबंध में नत्कीर की कथा में प्रस्तावित है। परमशिव के ही पद्य में नत्कीर ने दोष दिखाया है। संभ्रमित परमशिव कहता है —

''कट कट। यन्नत्कीरुंडट। कवितयु तप्पु वट्टेनट। यट्टु पदमी येट्टुवलेनो तेलिसेद '' — पद्य : 166

— अर्थात्, हाय। नत्कीर ने मेरी कविता में दोष दिखाया है। जाकर इस बात की खबर लेनी है।''कहकर परमशिव राजसभा में प्रवेश कर अपनी कविता में दोष लगानेवाले की बात पूछता है। जैसे —

ईराजन्पुनिमीद ने गवित साहित्यस्फुरन्माधुरी
चारु प्रौढिम जेप्पि पॅप, विनि मात्सर्यंबु वाटिंचि, न
त्कीरुं डूरक तप्पुवट्टेनट। येदी लक्षणंबो, यलं
कारंबो, पदबंधमो, रसमो? चक्कं जेप्पुडा तप्पनन्।'' पद्य: 167

— अर्थात्, इस राजा पर मैं स्फूर्तिवान और माधुर्यपूर्ण कविता रचने पर सुनकर मत्सर होकर नत्कीर ने दोष लगाया है। यह बता जाय कि (कविता का) लक्षण क्या है? रस क्या है और वह दोष क्या है?'' उक्त पद्य में धूर्जटि की कविता के माधुर्य और प्रौढता गुण उल्लेख्य हैं। और फिर कविता के प्रमुख अंगों का उल्लेख भी है। ऐसे काव्यांगों का उल्लेख कवि के शतक में भी आया है।

जलकंबुल रसमुलु, प्रसूनबुलु वाचाबंधमुलु
वाद्यमुलु गलशब्दध्वनु, लीचलाबर मलंका
रंबु, दीप्मुलु मेरुंगुलु, नैवेद्यमु माधुरी महिम
गा, गोल्तुन् निनु भक्तिरंजिल, दिव्यार्चन गूर्चि
नेर्चिन क्रियन् श्रीकालहस्तीश्वरा। — का॰श॰ः 50

— शतक के उक्त पद्य में कविता के मुख्य अंग — रस, पदबंध, शब्द और ध्वनि, अलंकार, स्फूर्ति, माधुरी — आदि हैं। धूर्जटि ने ऐसी कविता करना अपनी जिह्वा का नैसर्गिक काम बताया है। जैसा —— ''- - - - कवित्वंबुलु नाकु जैदनिवियेमो यौतिवा नादु जि, ह्वकु नैसर्गिक कृत्यमितिय सुमो।'' — का॰श॰ 65

इस प्रकार अपनी जिह्वा की नैसर्गिक प्रवृत्ति जो कविता माधुरी को परमशिव को नैवेद्य के रूप में समर्पित करके धूर्जटि धन्य बन गया है। ऐसी मान्यता कभी कवियों को नहीं मिलेगी। अस्तु, कवितामिमान से परमशिव को भी नगण्य करनेवाला नत्कीर अत्यंत धीर है। ऐसे स्वतंत्र पुरुष को अंत में 'साहित्यश्रीवर' बिरुद से परमशिव ही सम्मानित करता है। —''प्रत्यर्थंबगुचुन् 'भवद्भवमु सापत्यंबुनुंबोंदे, साहित्यश्रीवर।' नीकु निंपगु वर्रेबनिव्येदन् वेडु, भी लित्याग बोनरिंचिनाड'' पद्य॰ 2।8

उसी प्रकार अपने सर्वस्व को परमेश्वरार्पण करके धन्य हुए धूर्जटि को उसी 'साहित्यश्रीवर' बिरुद देकर सम्मानित करना सभी सहृदयपाठकगणों को समुचित है।

* * *

5.0.0 : कला—पक्ष

पंचम अध्याय : कला-पक्ष

5·1·0 : बिंब-योजना :—

कवि की प्रतिभा काव्य की बिंबयोजना में दिखाई देती है। उच्चकोटि की कविता में बिंबयोजना अवश्य होती है। काव्य के द्वारा दृश्यसाक्षात्कार की योजना उत्तम निदर्शन है। कवि, अपने मनोगत भावों को, वर्ण्यविषयों को भावुकों की भावना में साक्षात्कार कराने में ही उनकी प्रतिभा व्यक्त होती है। यह साधारण कवियों के लिए असाध्य है। धूर्जटि दृश्यसाक्षात्कार विधान में अत्यंत पटु है। उनकी कविता में वर्ण्य-विषय का दृश्यसाक्षात्कार यत्र-तत्र मिलता है। कालहस्तिमाहात्म्यम् में ऐसे अनेक स्थल हैं।

श्री कालहस्तीश्वर का मायाजंगम स्वरूप :—

सी: अडुगु नेत्तम्मुल नपरंजिपावालु करमुन गेडारक्कडांबु,

बंगारुज्वालबेरंगुल गोणामु, गलमुन रुद्राक्षकंठमाल,

योक्कचेत भसितमौक्तिकतोडिबेत्तंबु नीडिगट्टिन तरलेंदुधरखु,

माणिक्यरत्नुल योड्डाणंबु, भूतिपै बेट्टिन कस्तूरि तिलकबोट्टु,

सार्वकालिकताबूलचर्वणाई रागसौभाग्यमुन बद्मरागमगुल

दृणमुगा जूचु दंतपंक्तियुनु गलिगि यंगजाराति योक्कमिंडजंगमगुचु।। —पद्य: 30

— अर्थात्, पैरों में सोने के खड़ाऊ, हाथ में लोहे की कड़ी, कमर में गोणाम्, कंठ में रुद्राक्षमाला, एक हाथ में विभूति भरी हुई थैली के साथ बेंत, माणिक्य खचित

कमरबंद, (ललाट में) विभूति पर कस्तूरी की बिंदी, निरंतर तांबूलचर्वण से लाल रंग की दंतपंक्ति।'' यह है मायाजंगम का स्वरूप। पद्य के पढते ही जंगम का स्वरूप हमारे सामने दृष्टिगोचर होता है। इस से कवि के जमाने के जंगम स्वरूप का परिचय होता है। इसी प्रकार अयापुत्रिकाओं को जंगम स्त्रियों के रूप में चित्रित करता है। देखिए :—

सी। कुट्टिन चेंगाविगुड्डल योडिकट्टु, चेविंपु ताम्रताटंकमुलुनु
विविधवर्णच्छविविरचितकंथलु, चूर्णविभूतित्रिपुंड्रकमुलु
गरमूलमुल ब्रेलु कप्पेरल् जोलेलु, भूरुद्राक्षनेपथ्यमुलुनु,
शिवसूत्रबंधभासितशंभुलिंगमुल् कुट्टिन कुरुमापु बुट्टमुलुनु,
जिगुरुडाकेल भसित भिक्षलु बनरदोग जंगमु लैलर्पिप, जंगमांग
नाविलासंबुगेकोनि, नलिनमुखुलु कालहस्तीशु दर्शिंचुकोरक गदलि।।

— अर्थात्, सुई हुई काषायवस्त्रों का योडिकट्टु, कानों में तांबे के कनफूल, विविध-वर्णों से सज्जित वस्त्राभूषण, ललाट पर विभूतिरेखाएँ, बाहुमूलों में लटकती हुई थैलियाँ, शिवसूत्र से बंधेहुए शंभुलिंग, बायें हाथ में भस्म से भरी हुई भक्षिकाएँ —— इस स्वरूप को धारण करके श्रीकालहस्तीश्वर के दर्शन केलिए वेश्यापुत्रियाँ निकली हैं।'' इस में स्त्रियोचित वस्तु समूह से युक्त जंगम स्त्रियों का दृश्यसाक्षात्कार होता है।

यादवराजा के सामने दासी को पेश करने जब सैनिक आते हैं, उस समय के दासी का रूप विह्वलस्थिति में अत्यंत मनोहर रूप से चित्रित किया गया है :—

सी। वडिगोलिप योक्केल मुडिचिन कोम्मुडि गोब्बुनगट्टि जुट्टुकोन्नचेल,
मोडोंट बेनगेनियुन्न हारंबुलु, निद्रदेरेडिनेत्रनीरजमुलु,
वाडवारिन लेगवंटि चक्कनिमेनु, चिन्निकेंपुलतोडि चिगुरुमोवि

पिल्दुमारंबुन वेणकेडु पदमुलु, चनुगवक्रेगुन जंडियु कोनु

गलिगि, कलगनि मनमुतो गालडस्ति विमुनि दलचुचु, दिक्कुनी वेयटंचु

नरग नेतींचि यूर्पुलु संवडिंप, राजुमुंदर निलिचे नंभोजवदन।। पद्य॰ 47

—— तात्पर्य, एक ही कर से झट संवारे हुए केशपाश, शीघ्रता से कमर में लपेटे वस्त्र, परस्पर उलझे हुए हार, अभी अभी निद्रा से मुक्त नेत्रकमल, मुरझाये हुए लता के समान शरीर, लालमणियों के समान ओष्ठ, जघनभार से कंपित पैर, स्तन-द्वयभार से कांपनेवाली कमर, यही वह रूप है। कितना सुंदर वर्णन है। इस पद्य में रतिविह्वलता, सहज सौंदर्यवती, भयभ्रांता, पार्वती पति में संलग्न चित्त दासी का रूप हमारे सामने आता है।'' मकडी के तंतुओं से बने हुए भवनों पर पडे हुए ओस की बूंद, बूंदों पर पडी हुई सूर्य की किरणें, उसका सौंदर्य अत्यंत मनोहर रूप में चित्रित किया गया है। ——

प्रातः कालतुषारशीकरचयप्राप्तिन् लसन्मौक्तिको

पेतागारमुलट्लु वेल्पैसगि, तद्बिंदुच्छटाजाल रव

द्योतच्छायल गौतसेपु बहुरत्नोदीर्णगेहंबुले

लूताकल्पित तंतुपद्ममुलु चोल्चु, जेप्पजित्रंबुले। — पद्य । 97

—— अर्थात्, मकडी ने परमेश्वर के प्रति भक्ति से सूत के जो भवन बनाया है उन पर प्रातःकाल में ओस की बूंद के पडने पर वे मोतियों के महल के रूप में उन ओस कणों पर सूर्य की किरणों के पडने पर वे रत्नभवन के रूप में दिखाई देते हैं।'' इस तरह की बिंबयोजना में मधुरप्रेक्षणीय दृश्य दिखाई देता है। यह अनन्य सामान्य कविता की प्रतिभा है।

'कादंबिनि' देव की पूजा केलिए निकले हुए तिम्मना के रूपचित्रण में उसका

उसका आकार साक्षात्कार होता है। —

जलकंबाडि, विभूतिबेट्टुकोनि, रक्षामूलिकामालिका

वलयंबुल्बोडि, वद्दि कट्टुकु, शिरोवर्यिञुनीलालकं

बुल लेदीगनु जुट्टि, केल विलुनम्मुलूनि, कादेनि पू

जलु सेयन् वेडलें गुमारुडु पितृस्वांतंबु लुप्पोंगगन्। — पद्य: 38

— ''स्नान करके (ललाट पर) विभूति धारण करके (भूत पिशाचादि दुष्टशक्तियों से बचाने के लिए) रक्षा केलिए बनबूटियों से बनी हुई मालिकाएँ और करकंकण पहनता है, कमर पर धोती है, कोमल शिरोजों को पतली लता से बाँधे है, और हाथ में धनुर्बाणों को लेकर तिन्ना कादेनि की पूजा केलिए निकले हैं।'' इस में तिन्नना का आदिवासी रूप दिखाई देता है। शिकारी में थककर सोये हुए तिन्नना का रूप देखिये :—

ओडलंदेल्ल विभूतिपूत, पुलितोलोड्डाण, मल्लाडुजें

जेड, लात्मविचारनिश्चल दृगब्जातंबु, लक्षेन क

च्चड मेसंबुन, रुंडमाल गलदेशस्थाणुवु प्रालगा

नोडयंडोक्कर इक्कुमारकुललो नुद्यत्कृपामूर्तियै। — पद्य : 55

— अर्थात्, शरीर पर सफेद विभूतिलेप, बाघ के चर्म का कमरबंद, लटकनेवाली लाल रंग की जटाएँ, आत्मविचार में लगे हुए निश्चल नेत्रकमलद्वय, कौपीन पहने गले में कपालों की माला से विराजमान एक राजा तिन्नना के स्वप्न में साक्षात्कार हुए हैं।''

परमशिव का उचित रूप चित्रित किया गया है। निदान देखने पर इस में परमशिव का करुणामय रूप प्रकट होता है। इसके द्वारा धूर्जटि के हृदयस्थ भावना

मयत्व भी स्पष्ट होता है। शिवब्राह्मणत्व चित्रण देखिए :—

पंचाक्षरीपूतभसितत्रिपुंड्रांकि तांग भागमुलु, स्नानार्द्रशिखयु,

ग्रमकृतग्रंथि सूत्रप्रोतरुद्राक्ष भूषणंबुलु, शैवभाषणमुलु

नागुल्यलंबमानांबुरोमांबैन पोत्रंबु, नुपवीतसूत्रमुलुनु,

गरगृहीताभिषेक क्षीरसंपूर्ण भांडमु, बुष्पकरंडकंबु,

गुंडबोज्जयु, नौकपाटि गुज्जुरूपु, नुत्तरीयंबु दनरंग योगिहृदय

गोचरुनि गोल्वशिवबिह्नगोचरांगु डौकडुवच्चे शिवब्राह्मणोत्तमुंडु। पद्य: 94

— अर्थात्, ललाट पर भस्म की त्रिपुंड्र रेखाएँ, शरीर पर भस्मलेप, स्नान के बाद बंधी हुई केशपाश, डोटी में गाँठ बाँधकर रखी हुई रुद्राक्ष की मालाएँ, पैरों तक लटकती हुई धोती, शरीर पर यज्ञोपवीत (जेनेऊ), अभिषेक के लिए हाथ में क्षीर-पात्र, दूसरे हाथ में फूलदान, निकली हुई तोंद, एक प्रकार के वामन रूप से शिव की x पूजा करने के लिए शिवब्राह्मण आता है।'' — इन में ब्राह्मणोचित वेश के साथ साथ पुजारी का भी रूप दिखाई देता है। तिन्नना का शिव को माँस खिलाने का चित्र द्रष्टव्य है ——

चित्तोकचंक, नंबपोदि वेपुन, दोष्पलु केलुदोयि, दु

किल्ल बवित्रकांचनमुखीजल मोप्पग बक्त्र, भक्ति रा

जिल्ल, वदंबुमज्जनमु सेयुचु, दोष्पल मंजुडौरा

जल्लुनि 'नारगिंपु' मन, नापरमेश्वरुडूरकुंडिनन्। — का · मा पद्य: 87

— अर्थात्, काँख में धनु, पीठ पर लटकनेवाला तरकश, हाथों में माँसपूरित पत्तों के पात्र, गंडूषपूरित पवित्र स्वर्णमुखरी नदीजल से आकर भक्ति के साथ शिव का

स्नान कराके पत्तों के दोने में हुए माँस को खाने को शिव की प्रार्थना करता है। शिव चुप रहता है।" — इस चित्रण में तिन्नना की भोलीभाली विमुग्धभक्ति का स्वरूप स्पष्ट दिखाई देता है।

नक्कीर भूत के वश में होने के समय वहाँ के एक महावटवृक्ष का चित्रण देखिए।

सी। तन पलाशश्रेणिपरकांतटिकि वक्षपट्टुबुट्टपु मेत्कट्टुगाग,

तन पूर्व्वशाखाविलानंबु सुरलकु मरकतरचितहर्म्यमुलुगाग,

तन ब्रतुगोम्मलु मुनुलकु गल्पित पर्णशालाकलापमुलुगाग,

तन दिशाप्रांतघनविटपच्छाय वल्याद्रिहरिणशाद्वलमुगाग,

गी। वालखिल्यमुनीश्वरावासमैन रोहणमुरीति विलुमुलित देहमुगुचु,

गयप्रसिध्दिवहिंचु नक्षयवटंबु चंदमुननुन्न योक मरिकिकिकेगि। —पद्य। 19०

— अपने हरे भरे पत्तों की श्रेणी ऐसे दिखाई देते है मानों पृथ्वी के हरे पीतांबर हो, उपर की ओर फैली हुई शाखाओं के समूह देवताओं केलिए मरकतमणियों से निर्मित भवन के समान है, नीचे की ओर झुकी हुई डालियाँ मुनिजनों के लिए पर्णशालाएँ हैं, दसों दिशाओं में व्याप्त अपनी वृक्षच्छाया हिरणियों के लिए शाद्वल हो, वालखिल्यमुनि के निवासस्थान वटवृक्ष की तरह, गया के वटवृक्ष, जो पितृदेवताओं केलिए प्रसिद्ध है, की तरह वह वटवृक्ष अत्यंत विशालकाय रूप में विराजमान है।

इस प्रकार के अनेक स्थल कवि की रचना में मिलते हैं जो बिंबयोजना के अद्वितीय उदाहरण हैं। बिंबविधान में कवि की कल्पना चमत्कारपूर्ण है।

5.2.0। शैली :—

श्रीकृष्णदेवराय के काल में तेलुगु साहित्य ने 'प्रबंधधारा' नामक एक

नयी धारा को जन्म दिया है। उस काल के कविगणों ने होड लगाकर एक से बढ कर एक काव्यों की रचनाएँ की थीं, लेकिन वे जब पूर्ववर्ती तेलुगु साहित्य को अविकल मथने के कारण उद्भूत उनकी कविता में कई एक अनुकरण की परंपराएँ दिखाई देती हैं। धूर्जटि भी इस अनुसरण पद्धति के अपवाद नहीं। जैसे तेनालि रामकृष्ण ने बताया है प्रमुख प्रबंधकविगण ने अपनी अपनी काव्यनायिकाओं के रोदन को नंदर्भोचित रीति से अपनी रचनाओं में अभिवर्णित किया है। नीचे प्रमुख प्रबंधकवियों के कुछ ह पद्यों का उदाहरण दिया गया है :

कोमरि वसंतकालमुन कोयिल कोण्चिनयोगिनेड्चे न
ब्बिसरुहनेत्र कोंडचरि वेद्दयेलुंगुनवेकि वेकि वे
क्कसमगु मन्युवेगमुन गाडुक्कन्नुल नीरु सोनलै
युसिरिकक्कायलंतलु पयोधरमुल दिगुवारु नद्लुगान्। — श्रीनाथकवि

— श्रीनाथकवि की म काव्यनायिका वसंतकाल की कोयल की तरह पर्वत की चोटियों में प्रतिध्वनि करती हुई, आमलक प्रमाण अश्रुबिंदुओं को पयोधरों से गिराकर ऊँची ऊँची आवाज में रोयी थी।

पाटुनकिंतुलोलुरे कुपारहितात्मक नोवुड्रोयनि
च्चोट भवन्नवांगुरमु सोके गनुंगोनुमंचु बलिक य
प्पाइलगोधिवेदनमेर्पडिड येड्चेगलस्वनंबुतो
मीटिन विच्चुगुच्च बनुमिट्टल नश्रुलु चिंदुवंबगन्। — पेद्दना : मनुचरित्र

— अल्लसानि पेद्दना की नायिका अत्यंत मधुर स्वर में रोयी थी, उसकी अश्रुधारा अपने कठिन स्तनों पर टपककर चारोंओर फैल जाती थी।

इन सब की तरह धूर्जटि ने भी अपने काव्य (नायिका न होने पर भी) के यादव राजा की दासी के द्वारा रुलवाया था। देखिए कैसे रोयी थी :

पडिविगुवेन पीनकुचभारमुकंक परिभ्रिमोवकुं
डेडु तनुवल्लितो गटिकि डेंदमु भूपतिदूरबुन् वडिन्
वेडलु दुर्गबुपूरमुलु वेल्लिगोनन् बलविंबवेचमुन्
दडवुचु, बंचमध्वनुल तानमुलोनु पिकांगनागतिन्। — का॰ मा॰ पद्य॰ 50

कुट्टना जंगम के सामने देव का दूषण करती हुई पंचमध्वनि में बोलनेवाली पिकांगना की तरह रोयी थी। इस प्रकार प्रमुख प्रबंधकाव्यकारों की प्रत्येक काव्य नायिका रोयी थी, रोने में भी विलक्षणता थी। एक कांभोजी राग में रोयी तो, और एक पिकांगना की तरह, कोई ऊँची आवाज में रोयी तो कोई काकली ध्वनि में। प्रबंधों की भिन्नता के साथ साथ रोने में भी विलक्षणता देखने को मिलती है। अपनी अपनी रुचि के अनुसार कविगण ने अपनी अपनी नायिकाओं के द्वारा रुलवाया था।

धूर्जटि की कविता में पूर्वकवियों की तत्रापि पोतना, श्रीनाथ के कविता की एकरूपता या सादृश्य कहीं कहीं दिखाई देता है। तेलुगुओं के अनुसार यह कविता सारूप्य का सत्य देखने को बनता है। यह भी नहीं, धूर्जटि की रचना में श्रीनाथ की रचना के समान कई एक स्थल मिलते हैं। उदाहरण के रूप में नीचे कुछ पद्यों को उद्धृत किया गया है :

कांचिन वंचितपांचभौतिकमुखाकारांगमुन् जिन्नटी
संचारोचितरंगमुन् मुनिमनस्सम्यक्परिष्वंगमुन्
चंचाकाशमुमस्तभुजंगमु, गृपापांगिधमापांगमुन्
ब्रोचन्मुचित कलत्रसंगुमु पन्नराजन्महालिंगमुन्। — का॰ मा॰ पद्य॰ 112

कचिन् गांचन पंकजात विलसद्गंगौघसारंग फे
नांचत्तुगतरंग, वारिनिधि शीतागोतरामंगरो
मांचस्वदे जलाश्रुपूर जनकात्मानंद संपन्मनो
मंचाग्रस्थित विश्वनाथपदसम्यकसंग गंगानदिन्। — का. मा. पद्यः 189

आलोकिंचे महामुनींद्रुडु गुमाराश्रममुन् विंध्यक्ु
ष्मीलोपांतधराललामंबु बहुकुञ्जावनश्यामसुन्
ञालिचायलकम्धकायवजटाभरासनाथंबुरे
बालानाचित हैमकूटकलधौताट्टालक ग्राममुन्। — श्रीनाथ भीमेश्वरपुराणम्ः 61

इसी प्रकार

एक्कड बट्टिटनें गलल विक्कुव, लेक्कड नीरूपोकिनन्
जक्केरलण्य लेमनिन नारसुधारस, मेद्दुद्दुडिनन
जक्कदनंबु पेन्निधुलु, नीरममोप्पग नेमिचेसिनन्
मक्कुवचेल्वले मेरयु मन्मथकेलि योनर्चुनंतटन्। — का. मा. 43

एक्कडजूचिनन्मारसिपेक्कड जूचिनवेलमंचिरं
वेक्कड जूचिनंददिनि येक्कड जूचिन बुष्पवाटिकल्
एक्कड जूचिनन्नीदिमडीवलयंबुन भीममंडलं
वेक्कड यन्यमंडलमु लेक्कड मावन चेसिचूचिनन्। — श्रीनाथ भीमेश्वरपुराणम्ः 23

ऐसे ही और एक है ——

तिविरि यंगम्मुन दिम्मिरेत्तकमुन्न योडलेल्ल मब्बलजडकमुन्न
दलमेंसिक गात्रंबु चेलुवु दप्पकमुन्न बुद्दुलु मेन नेर्पडकमुन्न,
यलतविग्रहमुन नंकुरिंपकमुन्न, कायंबु वेडल्पु गाकमुन्न,
तनुवु जीमुरवलमुलु गारकमुन्न, वेडमीगलु मूगि तिनकमुन्न
मेमुडुगंग बोधिनपद्तजनुलु चूड रोयकमुन्न, कालाडिनपुडु
नडुववलेगाक केलामनगमु जूड दसनिवार्यंबु शमयमे परिहरिंप। का. मा. 177

पोडिदगु कंठंबु पौरिपुच्चकयमुन्न तलप्रकंपंबु बौदकयमुन्न
बोमलु कन्नुलमीद बोदिवि ग्रालकमुन्न परनेत्रमुलकड्डपडकमुन्न
श्रुतिपुटंबुल शक्ति सुरिगि पोक्कमुन्न वलुलाननमुन बर्वक्यमुन्न
हृदयंबुलोजागपदनु दप्पकमुन्न गात्रंबु शिथिलंबु गाकमुन्न
पंड्लुवेर्वासिकदलुचूपकयमुन्न कालिकडकेटिचुपूपेराकमुन्न
कालुसेयाडुकालंबे कदलवलयुदीर्यसेयकु देह मस्थिरमुगान।—श्रीनाथ, काशीखंडमुपद्य। 85

— इन सभी पद्यों में सास्म्य दिखाई देती है। ऐसे ही कई एक समानभाव सूचक अनुसरण मिलते हैं। राजसेवातिरस्कृति से होकर आमुष्मिक या मोक्षापेक्षा पर्यंत धूर्जटि का पोतना से साम्य सुस्पष्ट है। कृतियों की रचना में पोतना की तरह धूर्जटि भी ~~अधिक~~ अंत्यनियम, अनुप्रासयुक्त रचना में कुशल हैं। ~~श्री कालहस्तिमहा~~ श्रीकालहस्ति-माहात्म्यम् के प्र. आ. 109, 115, तृमा. 180, 181, 182, 184 भागवत के — स. क्र: 150, 160, 170, 171, 201, आदि।

श्री कालहस्तिमाहात्म्यम् के प्रथम आश्वास के यह पद्य पोतना की स्मृति-सी दिखाई देती है। जैसे —

विश्वपति। विश्वकल्पक। विश्वात्मक। विश्वसाक्षि। विश्वंभर। यो
विश्वजनि स्थितिलयकर। विश्वाधिक। यनग, निन्नुविंदु मोक्षा।

— यह पद्य पोतना के भागवत की गजेंद्रमोक्ष कथा के एक पद्य से भावसाम्य का मेलखाता है।——

विश्वकरु, विश्वदूरुनि विश्वात्मनि विश्ववेद्यु विश्वु न विश्वुन्
शाश्वतु नजु ब्रह्मप्रभु नीश्वरुनिं बरम पुरुषु नेमाजिर्यिंतुन्। — भागवत, अष्टमस्कंध। 88

शिवुनपेक्षिचिन चित्तंबु चित्तजायत्तमै चिड्डलपै नाकपडुने?
परशिवस्तुतिकथामाधलु विनुवीनु लानुने कूटेनलाडु पलुकु?
लीश्वरेश्वरमूर्ति नीक्षिंपगोरेडु चूपन्यरूपंबु जूडजनुने?
मुक्तिवल्लभुननुरक्तिगूडइलंचु कायंबुगूडुने कामुकुलनु?
इरसेन मङरू श्रीकालहस्तिनिलयु विनुतियोनरिंचु जिह्वल, मनुजततिकि
श्रियमु जेप्पंगबोवुने नचमुमीर? वारधर्मोपदेशंबुवलदु तल्लि। — का · मा · पद्य। 39

मंदारमकरंद माधुर्यमुनदेलु मधुपंबुबोवुने? मदनमुलकु,
निर्मलमंदाकिनी वीचिकलडूगु रायंचचनुने तरंगमुलकु
ललितरसालपल्लवखादिये चोक्कु कोयिलचेरुने कुटजमुलकु
पूर्णेंदुचंद्रिकास्फुरितचकोरकंबरुगुनेसांद्रनीहारमुलकु

चित्तमेरोतिनितरंबुजेरनेर्चु विनुतगुणशील माटलुवेयुनेल। — भागवत। पद्य। 150

— प्राचीन कवियों की अपेक्षा समनामधिक कवियों का भी धूर्जटि ने अनुसरण किया है। इस तथ्य की पुष्टि नीचे के उदाहरण से स्पष्ट होगी।

अडुगुनेक्कम्मुल नपरंजिपावालु, करमुन गेदारकंकणंबु
बंगारुजात बेरंगुल गोणामु, गलमुन रुद्राक्षकंठमाल,
योप्पकेल भसितमंजिकतोडिवेत्तंबु, नीवगादिम्ब तस्नैदुचस्त्रु
मेरु माणिक्यरत्नुल योड्डणंबु, भूतिपै बेट्टिन कस्तूरिबिल्लबोट्टु
सार्वकालिकतांबूलचर्वणाई रागसंभाव्यमुन वक्त्ररागमणुल
दुणमुगा जुबुदंतपंक्तियुनुगलिगि यंगजारातियोक्क लिंडजंगमगुचु।—का · मा · पद्य। 30

कपाल केदारकटकमुद्रितपाणिगुरुस्थलातामुतो गुर्विपट्ट
रैवेयमेन योड्डाणंबुलवणिचे नक्कंतिचिनपोट्टमक्कतीचि
यारकूटछायनवयतिपमजालु बड्गुडेइंबुन मस्ममलीच

मिद्ट्युरमुन निडुयोगपट्टेमेरय जेवुलस्काअपोगुलु चक्कुलिप
पाविकुवुलंबु जलकुंडिक्युनु बुनि चेरेदवंगिडभौचपसिद्धुडोकडु। —पेद्दना, मनुचरित्र

दोनों पद्यों के द्वारा माहात्म्य के 'मिंडजंगम' (माया जंगम) और मनुचरित्र का 'सिद्धपुरुष' की — इन दोनों की वेशभूषा में समानता बिलकुल एक है।

इस प्रकार धूर्जटि अन्यप्रबंध कवियों की तरह कविता पद्धतियों के अनुसरण में अपवाद नहीं है।

5·3·0 : छंद-योजना :—

श्रीकालहस्तिमाहात्म्यम् चार आश्वासों में विरचित प्रबंध है। चारों आश्वासों में कुल मिलाकर 759 गद्य और पद्य हैं। प्रथमाश्वास में 164, द्वितीयाश्वास में 160, तृतीयाश्वास में 228 और चतुर्थाश्वास में 207 गद्य और पद्य हैं। गद्य पद्यों का विवरण इस प्रकार है।

प्रथमाश्वास :— कंदपद्य — 46, उत्पलमाला पद्य — 25, शार्दूल पद्य—22 सीसपद्य — 21, मत्तेभ — 17, चंपकमाला — 14, संधिवचन — 9, तेटगीति — 5, वर्णनात्मक वचन — 1, स्रग्धर पद्य —1, पंचचामरवृत्त—1, आटवेलदि पद्य—1, दंडक — 1· कुल — 164·

इसी तरह अन्य आश्वासों में भी विविध छंदों में काव्य की रचना हुई। कवि ने सभी 'सीस' पद्यों के नीचे 'तेटगीति' पद्यों को ही रचा है, यह उनकी कविता की एक विशेषता है। सीसपद्यों की रचना में श्रीनाथ का अनुसरण द्रष्टव्य है।

द्वितीयाश्वास :— कंदपद्य — 35, आटवेलदि — 5, वर्णनात्मक वचन—5, सीसपद्य — 18, तेटगीति — 10, मत्तेभ — 16, शार्दूल — 31, उत्पलमाला—23

चंपकमाला — 8, सीसवचन — 7, रगड — 1, पंचचामरवृत्त — 1.

कुल — 160

<u>तृतीयाश्वास</u> :— कंद — 80, आटवेलदि — 6, वर्णनात्मक वचन — 8, सीसपद्य — 22, तेटगीति — 20, मत्तेभ — 15, शार्दूल — 21, उत्पल-माला — 28, चंपकमाला, — 11, सीसवचन — 13, पंचचामर — 1.

कुल 228

<u>चतुर्थाश्वास</u> :— कंद — 58, आटवेलदि —2, वर्णनात्मकवचन — 2, सीस-पद्य — 30, तेटगीति — 11, मत्तेभ — 14, शार्दूल — 19, उत्पल-माला — 40, चंपकमाला — 18, सीसवचन — 10, पंचचामर — 1. कुल: 228

लघु लयग्राहिवृत्त — 1. कुल : 207.

<u>प्रबंध के कुल छंदों का विवरण :—</u>

कंदपद्य — 219, आटवेलदि — 14, वर्णनात्मक वचन — 16, सीसपद्य— 91, तेटगीति — 46, मत्तेभ — 62, शार्दूल — 96, उत्पलमाला — 116, चंपक-माला — 52, सीसवचन — 39, रगडवृत्त — 1, पंचचामरवृत्त — 4, स्रग्धरवृत्त — 1, दंडक — 1, लयग्राहि — 1. कुल : — 759

धूर्जटि की रचना रस और भावों के अनुकूल की गयी है। सूक्ष्मपरिशीलन से यह तथ्य मालूम होता है। उदाहरण के लिए प्रथमाश्वास में अगस्त्यमुनि का तपोवन का वर्णन है। अगस्त्यमुनि के तप के बारे में देवराज इंद्र ने देवतासहित होकर विरिंचि को बताया है और ब्रह्मा भी सभी देवगण के साथ परमशिव का दर्शन किया है। यह वर्णन उत्पलमाला नामक पद्य में किया गया है। (प्रथमाश्वास की पद्य: 131)

अनंतर पद्य शार्दूलविक्रीडित है। सदाशिव का संदर्शन बहुतपःफल साध्य है। ऐसे संदेशों को पाकर ब्रह्मा हर्षपुलकित होता है। आनंदातिरेकता के कारण शरीर पुलकित होता है और आँखों में आनंदाश्रु बरसते हैं। ऐसी स्थिति में सदाशिव की प्रार्थना करता है। (प्रथमाश्वास पद्यसंख्या : 133) ब्रह्मा के संभ्रम और आश्चर्य का वर्णन शार्दूलछंद में हुआ है। वर्णन हमारे आँखों के सब सामने रूप धारण करता है।

ब्रह्मा के संभ्रम से सदाशिव के मुखपर मंदस्मित प्रकट होता है। इसे व्यक्त करने के लिए भिन्न छंद का प्रयोग किया गया है। यह चंपकमाला वृत्त में वर्णित है। (प्र・आ・134) अनंतर सदाशिव वशिष्ट की तपस्या की जानकारी को ब्रह्मा के कर्तव्य को धीमे से प्रकट करता है। इसका वर्णन कंदपद्य-छंद में चलता है। (प्र・आ・135)

सूक्ष्मपरिशीलन से हमें यह स्पष्ट होता है कि भावों के और ब रसों के अनुसार भिन्न छंदों का प्रयोग किया गया है। यह धूर्जटि की अपनी एक विशेषता है। अब धूर्जटि की कविता के कुछ छंदों के दोषों की ओर ध्यान दें। इनकी कविता में कहीं कहीं छंदों का दोष दिखाई देता है। यहदोष प्रमुखतः 'द' और 'ध' में, रेफ द्वय में और ड, ढ के प्रासनियम में है। ऐसा लगता है कि धूर्जटि ने उन दोषों को जानबूझकर ही स्वीकार किया है।

प्रास नियमों के दोष सूचित कई पद्य उदाहरण के रूप में दिये जाते हैं।

'द' और 'ध' की प्रास मैत्री :—

आदिगुहस्य - - - - - वेदनवे - - - - - द्या सुनभि - - - - याबुर मोम्पग

पद्य : 83

पहली पंक्ति का दूसरा अक्षर 'द' और तीसरी पंक्ति का दूसरा अक्षर 'ध' दोनों में प्रास का नियम किया गया है जो दोषपूर्ण माना जाता है। इसी प्रकार के नन्नया ने भी अपनी कृति महाभारत में किया है।

''कादन किट्टि पाटि यपकारपु - - - - बोधन जैसिचेसे - - - ''

— महाभारत आदिपर्व प्र• आ• पद्य: 124

रेफद्वय प्रासमैत्री :—

कर (= तेलुगु के दूसरा 'र' रूप) कैतत गुरु मेत्तग दिनगनोप गलुगक मनुजुलु। — का• मा — तृ• आ• पद्य : 155

ल. ड. प्रासमैत्री :—

''आडोगल वेगि इट्लकृत्यमुलु - - - - चूडा रत्नमु - - - - ''

— का• मा• च• आ• पद्य: 69

वल्लभामात्य की कृति क्रीडाभिराम में भी बिंदुपूर्वक (ह और ड) द, ड में प्रासमैत्री है। ''कंदुककेलि सल्पेडि—प्रकारमुनन् - - - तांडवोमोप्प - - - ''

— अतः धूर्जटि ने इस प्रासदोष को जानकर भी स्वीकार किया है। अन्य प्रबंध कवियों में भी ये दोष दिखाई देते हैं। लेकिन ऐसा लगता है कि वृत्त की शोभा और भावाबलता को दृष्टि में रखकर उन्होंने ऐसे प्रयोगों को किया होगा।

5• 4• 0 : भाषा :—

धूर्जटि की भाषा कितनी क्लिष्ट होती है उतनी ही सुलभग्राह्य और जितनी तीक्ष्ण होती है उतनी प्रसन्न भी। जो भी हो, अन्वय की जटिलता धूर्जटि की रचना में बहुत कम है। परंतु फिर भी कहीं कहीं ऐसेक पद्य हैं जो अर्थ समन्वय करने में

बाधक बनते हैं। उदाहरण के लिए :—

अक्कडदोत्ति सिंहारमाविरूगाकुलमै, पुनः पुनः
पक्कग निव्वनाग्रवनाबेपुरमै, शबरीकिरात स
म्यक्कृतमन्मथभ्रमविहारमहाझुरलीकुडुंगमै,
वाक्कबलीकृततेतरहकज्जवलनोग्रवनंबु वेल्वगुन्। — का · मा प्र · आ · पद्य: 65

कर वैसंतकु नोत्तग गरवस्क तिनेगनोपगलुगक, मनुजुल्
गुरगुरमुक्किरि, कौबरु परदेशाबुलकु अगि जीनरिव्रतुकुलकोरकुन्।
— का · मा · तृ · आ : पद्य : 155

— ऊपर के पद्यों का अर्थसमन्वय करने में बहुत कठिनता मालूम पडती है। धूर्जटि ने ऐसे शब्दों का प्रयोग भी किया है जो साधारण रूप में लोकव्यवहार में न हो। जैसे — गग्गुलकाडु — अर्थात् — धान के बिना डंटल, कोद्द — अन्न पकाने का उगलता पानी, अरबमुलु — फसल, तूलामालपु माटलु — धोखेबाजी बातें

धूर्जटि ने अन्य भाषा के शब्दों का प्रयोग भी किया है। जैसे —

<u>कर्नाटक शब्द</u> :— माडवेकु — कीजिए, बिजमाडु — पधारिये

<u>तमिलशब्द</u> :— तिरु — श्री, पेम्मम — स्त्री पर मोह।

ऐसे कई एक प्रयोग हैं। अन्य शैवकवियों की तरह धूर्जटि ने भी स्वतंत्र प्रयोगों को अपनाया है। 1) 'कोनु' के लिए 'क' का आदेश होना :— उदा :—

चिंचुक (द्वि · आ · प · सं : 26), विदल्चुक (तृ · आ · पद्य: 30), पुच्चुक (तृ · आ · पद्य : 43)

2) श्रुति कठोरवाली ह्रस्व संधियाँ : —

अ) ईंदि पीदि के बदले 'इवीवि' (द्वि · आ · पद्य : 154)

आ) क्रीडि + यिंचुक — 'क्रीडिंचुक' (च · आ · पद्यः 188)

ई) मापटि यीमैंदुनन् — 'मापटीसैंदुनन्' (च · आ · पद्यः 101)

ई) तौगियुंडेडु — 'तौगुंडेडु' (च · आ · पद्यः 52) — इस शब्द को शब्दपल्लव रूप में स्वीकार किया जायं तो दोष रहित कहा जाता है।

व्यवहारप्रसिद्ध शब्द-रूपों को प्रयोग करना : उदा : —

कौत मेपु नक्कुन् (द्वि · आ · पद्यः 113), कानी (च · आ · पद्यः 113)

श्रीकालहस्तीश्वरशतक में भी ऐसे प्रयोगों की बहुलता दिखाई देती है। उदा :

रोसि रोयदु (शतक पद्य : 32), अंतामिथ्य तलँचिचूड, चिंताकंतयु (शतक, पद्यः 3)

''अंतासंशायमो - - - - नैतादुअपरंपर - - - - यंतानंतशरीर - - - - जितम्मिन्नु - - -''

— शतक पद्यः 6।

आतुल्प्रोहुलु - - - मार्तंडान सर्हिपरादु - - - - '' — शतक पद्यः 69

''रोसिंबैटिदि - - - बूमिंबैटिदि - - - मुमिंबैटिदि - - - जैमिंबैटिदि - - - -''

— शतक पद्यः 7।

''कडासिंपरु - - - - '' शतक पद्यः 80

'नु' आगम का परिहार करना : उदाहरण :—

1) 'जारनौप्पुन' के बदले 'जारौप्पुन' — का · मा · द्वि · आ · पद्यः 57

2) 'चिंदुनमुतंबु' के बदले 'चिंबमुतंबु' — मा · द्वि · आ · पद्यः 135

3) 'वेटलाडु नेस्कुगोवालुलु' के बदले 'वेटलाडेस्कुगोवालुलु' — तृ · आ · पद्यः 15

4) 'अहिराजुनत्तुनि' के बदले 'अहिराजत्तुनि' — मा · तृ · आ · पद्यः 87

5) 'पौंडामर' के बदले 'पोत्तामर' — मा · तृ · आ · पद्य : 134

असल में यह प्रयोग व्याकरण दोष है (अर्थात् व्याकरण विरुद्ध है)। इन से धूर्जटि अनभिज्ञ नहीं है। फिर भी भावावेश में और कविता की धारा प्रवाह में ये दोष प्रयोग अपने आप आये हुए हैं (स्वयं व्यक्त हैं। जानबूझकर ही धूर्जटि ने इनका प्रयोग किया है। "निरंकुशाः कवयः" सूक्ति के अनुसार इन दोषों को ग्रहण करना चाहिए।

5·5·0 : कविता में अनौचित्य :—

धूर्जटि के श्रीकालहस्तिमाहात्म्य प्रबंध में कहीं कहीं कुछ अनौचित्य घटनाएँ दिखाई देती हैं। इन्हें कवि की भूल चूक के मानना अन्याय है। क्योंकि प्रबंध की रचना में कवि जागरूक होकर वर्ण्य वस्तु का विवेचन करता है। अतः प्रस्तुत प्रबंध में घटित कुछ अनौचित्यों की चर्चा करना समुचित है। पहला अनौचित्य :—

"श्री कालहस्तिनायक हठात् एक दिन यादव राजा की भक्ति को जानने के लिए" सोचकर — मा·प्र·आ·पद्य : 29

"लिंड जंगम या माया जंगम वेश धारण करके कालहस्ति आता है।"
— पद्य संख्या : 30

श्री कालहस्तीश्वर यादवराजा की भक्ति को परख केलिए माया जंगम वेशधारण करके श्रीकालहस्ति की ओर आता है। यहाँ तक ठीक है। प्रबंध की कथा के आद्योपांत यादवराजा की भक्ति की परीक्षा से संबंधित यत्न कहीं भी दिखाई देता नहीं। लिंडजंगम वेश के शंकर एक कथा सुनाने के बाद यादवराजा कौतुक से पूछता है कि और कौन भक्त है जिसने विश्वनाथ की सेवा करके इष्ट फलप्राप्ति पाई है। पूछने पर फिर शंकर और एक कथा सुनाता है। इस प्रकार सभी कथाओं को सुनाकर यादवराजा के प्रश्न करने को बिना अवकाश दिये ही "धन्य बनेगा, महादेव का

निवास बनवाओ'' कहकर तिरोहित होता है। — मा • च • आ • पद्य• 194 में अतः यादवराजा की परीक्षा नहीं हुई जो कथा के प्रारंभ में परमशिव से प्रतिपादित है।

दूसरा अनौचित्य :—

कथा का प्रारंभ शंकर के मिंडजंगम वर्णन से आरंभ हुआ। हमेशा संपादित जंगमों की सेवा करने की कला में चतुरा दासी के यहाँ बसता है। दासी के साथ मायाजंगम विविधविलासों के साथ कामक्रीडा करता है। इनका विस्तार वर्णन सात पद्यों में चलता है। मा • प्र • आ • 37 से 43 पद्य तक)

मिंडजंगमों की व्यभिचारपूर्ण प्रसंग वीरशैववाङ्मय में सुप्रसिद्ध है। धूर्जटि कवि वीरशैव नहीं। ऐसे परिस्थिति में यादवराजा की भक्ति की परीक्षा करने के लिए आये हुए साक्षात् परमशिव को दासी के संपर्क लगाकर कामक्रीडा के वर्णन करने में कोई औचित्य दीख पडता नहीं।

तीसरा अनौचित्य :—

तिन्नना शिवलिंग को देखते वक्त भक्ति परवशता में आता है। उस समय धूर्जटि ने उसके मुँह से अति मनोहरवर्णन करवाया है। (तृ • आ • पद्य• 65 से 72) ये बातें माधुर्य होकर बालकों की बातों की तरह अत्यंत स्वभावसिद्ध हैं। लेकिन इन में से एक पद्य बालोचित संभाषण के विरुद्ध-सा दिखाई देता है। देखिए —

तुरकु जुपुन गालिन कोरतनुरकु, नुरकु बुपुल बुद्दिटंचु नेरकु वारि
विरकुवालिगुब्बपालिंड्ल चिगुरकोंड्ल सेवकिव्वेदनीकु विबेयमव्व।

— का • मा • तृ • आ • पद्य• 7।

इस पद्य में उत्तुंग पयोधरवाली शबर जाति की युवतियों को परमशिव की सेवा केलिए सौंपने की सूचना मिलती है। तिन्नना अबोध भोलाभाला बालक है। युवती संपर्करहित है। ऐसे अबोध बालक के मुँह से शृंगारचर्चा करवाना असहज और अनौचित्यपूर्ण है।

<u>चांथा</u> :—

आदिवासी पुरुष अपने स्त्रियों के अवयवसौंदर्य की समता वन्य पशुओं से करने के लिए सिंह, मयूरी, हिरण और हाथी के बच्चा को घर में पालते हैं। स्त्रियों के अवयवों का साम्य इस प्रकार है। कमर का साम्य सिंह से, केशराशि मयूरी से, आँख का साम्य हिरण की आँखों से और मंदगतिहाथी से लिया गया है। द्वि॰ आ॰ पद्य॰ 16 —— इस वर्णन में केशराशि की समता मयूरी से की गयी है। लेकिन मयूरी की पूँछ छोटी होती है जो यह साम्य की ... अनौचित्य है। इस प्रकार पूरे प्रबंध में कहीं कहीं अनौचित्य दिखाई देते हैं। लेकिन ये अनौचित्य 'निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवांकः' सूक्ति के अनुसार त्याज्य हैं।

* * *

६ · ० · ०

निष्कर्ष : तेलुगु साहित्य को महाकवि धूर्जटि का योगदान

षष्ठ अध्याय

निष्कर्ष : तेलुगु साहित्य को महाकवि धूर्जटि का योगदान

आंध्र साहित्य का इतिहास सहस्र वर्षों का है। यह तीन युगों में विभाजित किया जाता है। 1) आदिकाल 2) मध्यकाल 3) आधुनिक काल। मध्यकाल पुनः दो युगों में विभाजित किया जाता है। 1) पूर्व मध्ययुग में अधिकतर पुराणों का अनुवाद किया गया है। उत्तर मध्ययुग में प्रबंधकाव्यों का प्रणयन किया गया है। ई॰ 15 से ई 18 तक प्रबंधयुग कहा जाता है, यह युग दो भागों में विभाजित किया म जाता है : 1) रायलुयुग 2) नायकराजयुग। रायलुयुग आंध्र इतिहास में स्वर्णयुग माना जाता है। कृष्णदेवरायलु ने ई॰ 1509 से ई 1530 तक विजय-नगर साम्राज्य का शासन किया था। भोजराज ने संस्कृत साहित्य की जितनी सेवा की है उतनी ही सेवा इन्होंने तेलुगु की की है। इसलिए श्रीकृष्णदेवराय आंध्र — भोज नाम से लोकप्रिय हुए। ये कवि थे, पंडित थे। इनके दरबार में अष्टदिग्गज नामक प्रसिद्ध आठकवि रहते थे। इन में उल्लेखनीय कवि हैं : पेद्दना, तिम्मना, मल्लना, धूर्जटि आदि कवि।

2) धूर्जटि महाकवि अष्टदिग्गजों में से एक हैं। इस कवि की कृति श्री काल-हस्तिमाहात्म्य क्षेत्रमाहात्म्यपरक ग्रंथ है। अधिक पंडितों का मत यह है कि श्रीकाल-हस्तीश्वरशतक भी इस कवि की रचना है। यह शतक शतक साहित्य की शिरोमणि है। इस में भक्ति एक ओर प्रकटित होती है और दूसरी ओर विगत जीवन के प्रति पश्चात्ताप अभिव्यक्त किया गया है। शतक की शैली अत्यंत प्रौढ एवं मनोहर है।

अनेक पद्य धूर्जटि की शिवभक्ति के ज्वलंत उदाहरण है। कवि ने राजाश्रित होकर भी अपनी कृति श्रीकालहस्तिमाहात्म्यम को शिव को ही समर्पित किया है जिस से कवि का स्वतंत्र व्यक्तित्व स्पष्ट परिलक्षित होता है।

3) श्रीकालहस्तिमाहात्म्य क्षेत्र परक काव्य है। इस में शिवभक्ति परक कथाओं का संकलन है। स्कंदपुराणांतर्गत कथा के आधार पर यह प्रबंध लिखा गया है। इस में यह सूचित किया गया है कि मानवेतर प्राणी पिपीलिका, पशु, सर्प आदि भी शिवभक्ति द्वारा मोक्ष की प्राप्ति के लिए योग्य हैं। इस में आदिवासी तिन्नना, की कथा भी संलग्न है। इस में महाकवि नत्कीर की कथा अत्यंत मनोहर है। वर्णन अत्यंत सहज है। इस से कवि की प्रकृति निरीक्षण शक्ति स्पष्ट है। धूर्जटि अनुभवी थे। उन्होंने अपनी कटु एवं मधुर अनुभूतियों का उल्लेख अपने काव्य में किया है। इनकी कृतियों से यह स्पष्ट होता है कि युग की अनुभूतियों के अनुसार उनकी कवितानुभूति भी बदलती गयी है। ऐहिक सुखों का उपभोग कर भोगमय जीवन से तंग आकर उन्होंने वैराग्यभावना को अपना लिया होगा। धूर्जटि श्रीविद्या के उपासक थे। उनके अनेक पद्यों में श्रीविद्या से संबंधित तांत्रिकविधानों का उल्लेख किया गया है। महादेशिक सार्वभौम नामक सद्गुरु की कृपा से योगी बने और अद्वैतवादी बनकर मोक्षलक्ष्मी के साधक बन गये।

4) धूर्जटि समन्वयवादी हैं। वे हरिहर का अभेदत्व मानते थे। फिर भी वे शिव भक्त थे। उनकी दृष्टि में शिव ईश्वर हैं, परमात्मा हैं और भक्तसुलभ हैं।

5) धूर्जटि हठवादी नहीं। वे उदार भक्त थे। भक्ति केलिए लिंग, वय जाति का प्रश्न नहीं उठता। शिक्षित एवं अशिक्षित, उच्च एवं नीच ब्राह्मणों एवं अब्राह्मणों, नागरिक एवं अनागरिक — सब मानवों के लिए भक्ति का मार्ग प्रशस्त है।

इसलिए श्रीकाल हस्तिमाहात्म्य में श्री (मकडी), काल (सर्प), हस्ति (हाथी) — इन तीनों ने परमेश्वर की आराधना कर परमपद प्राप्त किया है। भवबंधनों की विमुक्ति केलिए परमेश्वर के चरणकमलों पर अपने हृदय को समर्पित किया है। इसी तरह इस में जीवगत छटपटाहट, भवबंधनों का उच्छेद करने की छटपटाहट झलकती है। स्वर्णमुखरी नदी के तट पर कालहस्तीश्वर की प्रतिष्ठा करते समय अगस्त्यमुनि ने की गयी स्तुति दार्शनिक परक है। 'सर्वंशिवमयं' के आध्यात्मिक तथ्य को दृढपूर्वक मानने के कारण प्रकृति वर्णन में भी यही प्रवृत्ति दिखाई देती है। श्रीकालहस्तीश्वर शतक में कवि ने अपने मनोगत भावों को स्पष्ट व्यक्त किया है। इस में लोकव्यवहार की बाकी झाँकी मिलती है। भगवान के प्रति आस्था, दीनता, विनम्रता, और लौकिक जीवन के प्रति निर्लिप्तता ऐहिक भोगों के प्रति विरक्ति, राजाओं के निर्मम व्यवहार — आदि का स्पष्ट प्रतिबिंब है।

श्रीकालहस्तिमाहात्म्य में शांतरस अंगिरस है। अंगरसों में शृंगार प्रधान रस है। वीर, अद्भुत, हास्य और करुण रसों की व्यंजना भी की गयी है। काव्य की विविध कथाओं की एकसूत्रता करनेवाली शिवभक्ति है। शिवभक्त सर्वसमर्पण भावना के द्वारा शिव की शरण में जाकर शिव में ही तादात्म्य होना चाहता है। यही शांतरस की परमावधि है। धूर्जटि की कविता में उल्लेखनीय विषय यह है कि रसों की योजना में उनके विरोधी रसों के अंग बनाते हैं। यह प्रवृत्ति अन्य प्रबंधकवियों में कम दिखाई पडती है।

6) कवि की प्रतिभा काव्य की बिंबयोजना में दिखाई देती है। धूर्जटि दृश्य-साक्षात्कार विधान में अत्यंत पटु है। कवि अपने मनोगत भावों को, वर्ण्यविषयों को

भावुकों की भावना में साक्षात्कार कराने में सफल हुए हैं। उनके अलंकार सौंदर्य-वर्धक है। उन में कृत्रिमता का पुट बिलकुल नहीं। साम्य अलंकारों के विपुल प्रयोग से काव्य का सौंदर्य निखर उठता है। बिंबयोजना में कवि की कल्पना चमत्कारपूर्ण है। शैली सरल है। प्रबंधकाव्य चार आश्वासों में विरचित है। यह चंपूकाव्य है जो क गद्य और पद्यात्मक है। छंदयोजना रस और भावों के अनुकूल है।

7) धूर्जटि भक्त कवि थे। वे अपने जीवन को परमेश्वरार्पण करके धन्य हुए हैं। धूर्जटि 'साहित्यश्रीश्वर' नाम से साहित्यक्षेत्र में प्रसिद्ध हुए हैं। धूर्जटि सचमुच शिवभक्त थे। उनकी भक्ति श्रुति सम्मत थी। उनकी शैली माधुर्यपूर्ण है। प्रबंधयुग में धूर्जटि केलिए वही स्थान प्राप्त हुआ है जो स्थान शिव के लिए तीन देवों में प्राप्त हुआ। इसलिए आलोचनाक्षेत्र में यह उक्ति अत्यंत लोकप्रसिद्ध है जिसका उल्लेख बार बार किया जाता है।

''स्तुतिमतियेन यांध्रकवि ॠ धूर्जटि पल्कुल केल गलोनो यतुलित माधुरीमहिम।''

* * *

परिशिष्ट :

सहायक ग्रंथ-सूची

परिशिष्ट

सहायक ग्रंथ-सूची

1) आंध्र वाङ्मयचरित्रमु — श्री टेकुमल्ला · अच्युतराव, युनिवर्सिटी प्रिंटर्स 1947

2) आंध्रवाङ्मयचरित्रमु — श्री दिवाकर्ल वेंकटावधानि, आंध्र सारस्वतपरिषत्, हैदराबाद

3) आंध्र विज्ञानसर्वस्वमु — तेलुगु भाषासमिति, मद्रास

4) आंध्रुल संक्षिप्त चरित्र — श्री स्टुकूरि बलराममूर्ति, विशालांध्र प्रचुरणलु, विजयवाडा

5) प्रबंधवाङ्मयपरिणाममु — श्री चिन्नकोटा माधवराव, शेषाचलम एंड को, मद्रास

6) विजयनगरांध्रुलु — श्री शिष्ट्ला लक्ष्मीकांतशास्त्री, निर्मला पब्लिकेशन्स, विजयवाडा-।

7) श्री कालहस्तिमाहात्म्यमु —— धूर्जटि, वेंकट्रामा एंड को, विजयवाडा —।

8) श्री कालहस्तिमाहात्म्यमु — ,, आंध्रप्रदेश साहित्य अकादमी, हैदराबाद

9) श्री कालहस्तीश्वरशतकम् ,, गोल्लपूडि वेंकटस्वामिसन्स राजमहेंद्रवरम्

10) सारस्वतव्यासमुलु – प्रथम संपुट – दे · रामनुजराबु, आंध्रप्रदेश साहित्यअकादमी, हैदराबाद।

========

1) आंध्रसाहित्यपरिषत्पत्रिका, वर्ष 47, अंक 3, आंध्रसाहित्य परिषत्, काकिनाडा

2) ,, ,, अंक 4 ,, ,,

3) आंध्र पत्रिका — दैनिक — 30–11–58

4) ,, नागेश्वरशतजयंतिसंचिका – 1967–68

5) आंध्र प्रभा —— 19–10–58

6) आंध्र पत्रिका — उगादि संचिका — 1954 —55

7) भारती — नवंबर, 1960 — काशीनाथुनि नागेश्वररावपंतुलुगारु, मद्रास

8) भारती — मार्च, 1962 ,,

9) भारती — जुलाई, 1962 ,,

10) ,, दिसंबर, 1963 ,,

11) ,, मई, 1964 ,,

12) योगविषयमुलु — रामकृष्णप्रभा

13) साहिति — मार्च 1962, साहिती कार्यालयं, आफिनिलयं, एलूर

14) ,, फरवरी, 1964 ,, ,,

15) ,, जुलाई, 1964 ,, ,,

* * *